WWW.GRADESETTER.COM

भारतीय राजव्यवस्था एवं शासन

1. ऐतिहासिक परिदृश्य

संविधान की संकल्पना

संविधान की संकल्पना पर विचार करने से पूर्व इस तथ्य पर विचार करना एवं उसे समझना अधिक महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है कि संविधान आखिरकार है क्या और किसी भी देश के लिए इसका क्या महत्व है? जो इसके प्रत्युत्तर में यह कहा जा सकता है कि संविधान किसी भी देश की सर्वोच्च मौलिक विधि होती है। संविधान एक पुस्तक मात्र न हो कर नीति-नियमों, कानूनों, शक्तियों एवं उत्तरदायित्वों का एकमात्र स्रोत होता है, जो कार्यपालिका, विधायिका एवं न्यायपालिका के मध्य शक्तियों एवं अधिकारों का स्पष्ट विभाजन करता है ताकि उनमें किसी भी प्रकार का टकराव उत्पन्न न हो। वस्तुतः राजनीतिक शब्दावली के अनुसार, संविधान किसी राजनीतिक व्यवस्था के उस आधारभूत ढांचे का निर्धारण करता है, जिसके अंतर्गत उसकी जनता शासित होती है। यह राज्य के लिए आवश्यक कार्यपालिका, विधायिका एवं न्यायपालिका जैसे महत्वपूर्ण अंगों की स्थापना करता है तथा उनकी शक्तियों एवं उत्तरदायित्वों की व्याख्या एवं उनका सीमांकन भी करता है। साथ उनके पारस्परिक एवं जन-साधारण के साथ सम्बन्धों का विनियमन भी करता है। अधिक सरल शब्दों में यदि कहा जाए तो संविधान उन समस्त अधिकारों एवं शक्तियों का एक ऐसा समुच्च है जो कि एक ओर जहां किसी भी राज्य में पाए जाने वाले जन-संगठनों के मध्य सम्बन्धों का विनियमन करता है वहीं दूसरी ओर जन-संगठनों एवं प्रत्येक नागरिक के मध्य भी सम्बन्ध विनियमित करता है। विश्व के अधिकांश देशों का संविधान लिखित है, जो कि सम्बन्धों, शक्तियों एवं उत्तरदायित्वों का स्पष्ट रूप से विभाजन करता है किंतु ब्रिटेन एवं इजरायल के संविधान इसका अपवाद हैं। इन देशों के संविधान का अधिकांश हिस्सा अलिखित है और परम्पराओं, रीति-रिवाजों आदि से स्वयंमेव विकसित हुआ है। लिखित संविधान हेतु अन्य स्रोतों से भी जानकारी प्राप्त करना अवश्यक होता है।

किसी भी दस्तावेज में शब्दों को व्याख्यायित करने की आवश्यकता पड़ती है अतः संविधान में उल्लिखित प्रावधानों को भी समय-समय पर संशोधित करने की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार न्यायपालिका द्वारा समय-समय पर प्रेषित न्यायिक निर्णय, रीति-रिवाज, रूढ़ियां, अभिसमय तथा अधिकार-पत्र भी मार्ग-दर्शन एवं विनियमन का कार्य करते हैं अतः इन्हें भी देश के संविधान का एक अंग माना जा सकता है।

संविधानों को विभिन्न श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है, जैसे—संघीय (आस्ट्रेलिया, संयुक्त राज्य अमेरिका) अथवा एकात्मक (फ्रांस एवं ब्रिटेन); शक्तियों का स्पष्ट विभाजन (जैसे—संयुक्त राज्य अमेरिका में) या शक्तियों के मिश्रण वाला (जैसे—ग्रेट ब्रिटेन का संविधान) अथवा न्यायिक पुनरीक्षण की प्रमुखता वाला संविधान (जैसे—संघीय गणतंत्र जर्मनी) या संवैधानिक कानूनों के विशेष प्रावधानों वाला संविधान (स्विट्जरलैण्ड)।

देश में संवैधानिक नियंत्रण स्थापित करने के विभिन्न तरीके हो सकते हैं, किंतु का सर्वाधिक प्रचलित तरीका लिखित संविधान के माध्यम से एक ऐसे संवैधानिक न्यायालय अथवा परिषद की स्थापना है, जो कि सभी विद्यमान विधिक संस्थाओं द्वारा संवैधानिक मान्यताओं की स्वीकृति को सुनश्चित करे।

भारत में संवैधानिक विकास

नये गणराज्य के संविधान का शुभारंभ 26 जनवरी, 1950 को हुआ किंतु अपने लंबे इतिहास में प्रथम बार एक आधुनिक संस्थागत ढांचे के साथ संसदीय लोकतंत्र बना। लोकतंत्र एवं प्रतिनिधि संस्थाएं भारत के लिए पूर्णतया नयी नहीं हैं। कुछ प्रतिनिधि निकाय तथा लोकतंत्रात्मक स्वशासी संस्थाएं वैदिक काल में भी विद्यमान थीं। ऋग्वेद में 'सभा' तथा 'समिति' नामक दो संस्थाओं का उल्लेख है। उल्लेखनीय है कि ऋग्वैदिक काल में आर्यों का प्रशासन तंत्र कबीले के प्रधान के हाथों चलता था, क्योंकि वही युद्ध का सफल नेतृत्व करता था। वह राजा कहलाता था। प्रतीत होता है कि ऋग्वैदिक काल में राजा का पद आनुवंशिक हो चुका था। फिर भी प्रधान या राजा के हाथ में असीमित अधिकार नहीं रहते थे, क्योंकि उसे कबायली संगठनों से परामर्श लेना पड़ता था। कबीले की आम सभा को 'समिति' कहते थे और 'सभा' अपेक्षतया छोटा और चयनित वरिष्ठ लोगों का निकाय था, जो मोटे तौर पर आधुनिक विधानमंडलों में उच्च सदन के समान था। वहीं से आधुनिक संसद की शुरूआत मानी जा सकती है। आधुनिक अर्थों में, संसदीय शासन प्रणाली एवं विधायी संस्थाओं का उद्भव एवं विकास लगभग दो शताब्दियों तक ब्रिटेन के साथ भारत के संबंधों से जुड़ा हुआ है। परंतु यह मान लेना गलत होगा कि बिल्कुल ब्रिटेन जैसी संस्थाएं किसी समय भारत में प्रतिस्थापित हो गई थीं। जिस रूप में भारत की संसद और संसदीय संस्थाओं को आज हम जानते हैं उनका विकास भारत में ही हुआ। इनका विकास विदेशी शासन से मुक्ति के लिए और स्वतंत्र लोकतंत्रात्मक संस्थाओं की स्थापना के लिए किए गए अनेक संघर्षों और ब्रिटिश शासकों द्वारा रुक-रुक कर, धीरे-धीरे और छोटे-छोटे टुकड़ों में दिए गए संवैधानिक सुधारों के द्वारा हुआ।

1773 का रेग्युलेटिंग एक्ट

ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारियों में व्याप्त अनुशासनहीनता तथा स्वार्थपरक प्रवृत्ति के कारण कम्पनी को हुई क्षति पर रिपोर्ट देने के लिए तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमंत्री लॉर्ड नॉर्थ द्वारा 1772 में गठित गुप्त समिति के प्रतिवेदन पर 1773 में ब्रिटिश संसद द्वारा रेग्युलेटिंग एक्ट पारित किया गया, जिसमें निम्नलिखित प्रावधान किये गये थे:

(i) कंपनी के डायरेक्टरों को कहा गया कि वे अब राजस्व से संबंधित सभी मामलों तथा दीवानी एवं सैन्य प्रशासन के संबंध में किये गये सभी प्रकार के कार्यों से सरकार को अवगत करायेंगे।

(ii) अबं 500 पौंड के अंशधारियों के स्थान पर 1000 पौंड के अंशधारियों को संचालन चुनने का अधिकार दिया गया।

(iii) संचालन मंडल का कार्यकाल चार वर्ष कर दिया गया। प्रति वर्ष उनमें से एक-चौथाई नये सदस्यों के निर्वाचन की पद्धति अपनायी गयी।

(iv) इस अधिनियम द्वारा बंगाल में 1774 में एक उच्चतम न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) की स्थापना की गयी। इस न्यायालय को प्राथमिक तथा अपील के अधिक की अनुमति थी। इस न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश तथा तीन अ न्यायाधीश थे। सर एलिजा इम्पे को सुप्रीम कोर्ट का प्रथम मुख्य न्याया नियुक्त किया गया। न्यायालय को यह भी अधिकार था कि वह कंपनी सम्राट की सेवा में लगे व्यक्तियों के विरुद्ध मामले, कार्यवाही अथवा शि की सुनवायी कर सकता था।

(v) बंगाल में एक प्रशासक मंडल गठित किया गया, जिसमें गवर्न तथा चार पार्षद नियुक्त किये गये। ये पार्षद, नागरिक तथा सैन्य प्र सम्बद्ध थे। इस मंडल में निर्णय बहुमत के आधार पर लिये जाते अधिनियम द्वारा प्रशासक मंडल में वारेन हेस्टिंग्स को गवर्नर-जनरल तथा क्लैवरिंग, मॉनसन, बरवैल एवं फिलिप फ्रांसिस को पार्षदों के रू

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

किया गया। इन सभी का कार्यकाल पांच वर्ष था तथा कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स की सिफारिश पर केवल ब्रिटिश सम्राट द्वारा ही इन्हें हटाया जा सकता था।

(vi) कानून बनाने का अधिकार गवर्नर-जनरल तथा उसकी परिषद को दे दिया गया किंतु इन कानूनों को लागू करने से पूर्व भारत के सचिव से अनुमति प्राप्त करना अनिवार्य था।

(vii) बंगाल के गवर्नर को अब समस्त अंग्रेजी क्षेत्रों का गवर्नर कहा गया। सपरिषद गवर्नर-जनरल को बंगाल में फोर्ट विलियम की प्रेसीडेंसी के असैनिक तथा सैनिक शासन का अधिकार दिया गया। कुछ विशेष मामलों में उसे बंबई तथा मद्रास की प्रेसीडेंसियों का अधीक्षण भी करना था।

1781 का संशोधित अधिनियम

सर्वोच्च न्यायालय कंपनी के कर्मचारियों के विरुद्ध उन कार्यों के लिए कार्यवाही नहीं कर सकता, जो उन्होंने एक सरकारी अधिकारी की हैसियत से किये हों।

(i) कंपनी के राजस्व कलेक्टरों एवं कानूनी अधिकारियों को भी सरकारी अधिकारी के रूप में किये गए कार्यों के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के कार्यक्षेत्र से मुक्त कर दिया गया।

(ii) गवर्नर-जनरल एवं उसकी परिषद के सदस्यों को भी यह उन्मुक्तता प्रदान की गई।

(iii) कानून बनाते तथा उनका क्रियान्वयन करते समय भारतीयों के सामाजिक तथा धार्मिक रीति-रिवाजों का सम्मान किये जाने के निर्देश दिये गये।

1784 ई. का 'पिट्स इंडिया एक्ट'

गवर्नर जनरल वॉरेन हेस्टिंग की साम्राज्यवादी नीतियों को लेकर कंपनी एवं संसद के बीच मतभेद पैदा हो गये थे। इसी कारण 1782 में 'हाउस ऑफ कॉमंस' में हेस्टिंग्स को वापस बुला लेने का प्रस्ताव भी पारित हुआ। परंतु 'कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स' ने संसद की इच्छा की अवहेलना कर दी। इन स्थितियों से निबटने के लिए कंपनी पर नियंत्रण के लिए 1783 ई. में इंग्लैंड के तत्कालीन नॉर्थ फॉक्स मंत्रिमंडल ने 'फॉक्स इंडिया बिल' संसद में पेश किया। 'हाउस ऑफ कॉमंस में विधेयक पारित हो जाने के बावजूद सम्राट जॉर्ज तृतीय के विरोध के कारण 'हाउस ऑफ लॉर्डस' द्वारा विधेयक अस्वीकार कर दिया गया और फॉक्स मंत्रिमंडल को त्यागपत्र देना पड़ा। अगली सरकार पिट द यंगर ने बनायी, जिसने 1784 में संसद में फिर से 'इंडिया बिल' पेश किया, पर फॉक्स के विरोध के कारण विधेयक गिर गया। संसद भंग कर नए चुनाव कराए गये, जिसमें पिट री बहुमत से विजयी हुआ। उसने कुछ संशोधनों के साथ अपना 'इंडिया बिल' र से संसद में रखा, जो पारित हो गया और 1784 के 'पिट्स इंडिया एक्ट' नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस अधिनियम में निम्नलिखित प्रावधान किये गये थे:

(i) 6 कमिश्नरों के एक नियंत्रण बोर्ड की स्थापना की गयी, जिसे भारत ंग्रेजी अधिकृत क्षेत्र पर पूरा अधिकार दिया गया। इसे 'बोर्ड ऑफ कंट्रोल' म से जाना जाता था। इसके सदस्यों की नियुक्ति ब्रिटेन के सम्राट द्वारा ाती थी। इसके 6 सदस्यों में—एक ब्रिटेन का अर्द्धमंत्री, दूसरा विदेश सचिव । अन्य सम्राट द्वारा प्रिवी काउंसिल के सदस्यों में से चुने जाते थे।

ii) बंबई तथा मद्रास के गवर्नर पूर्णरूपेण गवर्नर-जनरल के अधीन कर ।।

i) भारत में गवर्नर-जनरल के परिषद की सदस्य संख्या चार से घटाकर दी गयी। इन तीन में से एक स्थान मुख्य सेनापति को दे दिया गया।

भारत में कंपनी के अधिकृत प्रदेशों को पहली बार नया नाम 'ब्रिटिश ारतीय प्रदेश' दिया गया।

ंचालक मंडल द्वारा तैयार किये जाने वाले पत्र व आज्ञाएं नियंत्रण ख रखे जाते थे। संचालन मंडल को भारत से प्राप्त होने वाले पत्रों ण बोर्ड के सम्मुख रखना आवश्यक था। नियंत्रण बोर्ड पत्रों में सकता था।

नी के डायरेक्टरों की एक गुप्त सभा बनायी गयी, जो अधिकार क मंडल के सभी आदेशों को भारत भेजती थी।

ल तथा बंबई के गवर्नरों की सहायता के लिए तीन-तीन सदस्यीय ा किया गया।

(viii) देशी राजाओं से युद्ध तथा संधि से पहले गवर्नर-जनरल को कंपनी के डायरेक्टरों से स्वीकृति लेना अनिवार्य था।

(ix) भारत में अंग्रेज अधिकारियों के ऊपर मुकदमा चलाने के लिए इंग्लैण्ड में एक कोर्ट की स्थापना की गयी।

1786 का अधिनियम

इस अधिनियम में निम्नलिखित प्रावधान थे:

(i) गवर्नर-जनरल को मुख्य सेनापति की शक्तियां भी मिल गयीं।

(ii) गवर्नर-जनरल को विशेष परिस्थितियों में अपनी परिषद के निर्णयों को रद्द करने तथा अपने निर्णय लागू करने का अधिकार दे दिया गया।

1793 का चार्टर एक्ट

इस अधिनियम में निम्नलिखित प्रावधान थे:

(i) कंपनी के व्यापारिक अधिकारों को अगले 20 वर्षों के लिये और आगे बढ़ा दिया गया।

(ii) नियंत्रण अधिकरण के सदस्यों का वेतन भारतीय कोष से दिया जाने लगा।

(iii) गवर्नर जनरल एवं गवर्नरों की परिषदों के सदस्यों की योग्यता के लिए एक शर्त बना दी गई कि सदस्य को कम से कम 12 वर्षों तक भारत में रहने का अनुभव हो।

(iv) विगत शासकों के व्यक्तिगत नियमों के स्थान पर ब्रिटिश भारत में लिखित विधि-विधानों द्वारा प्रशासन की आधारशिला रखी गयी। नियमों तथा लिखित विधियों की व्याख्या न्यायालय द्वारा की जानी थी।

1813 का चार्टर अधिनियम

कंपनी के एकाधिकार को समाप्त करने, ईसाई मिशनरियों द्वारा भारत में धार्मिक सुविधाओं की मांग, लार्ड वेलेजली की भारत में आक्रामक नीति तथा कंपनी की सोचनीय आर्थिक स्थिति के कारण 1813 का चार्टर अधिनियम ब्रिटिश संसद द्वारा पारित किया गया, जिसमें निम्नलिखित प्रावधान किये गये थे:

(i) कंपनी का भारतीय व्यापार का एकाधिकार समाप्त कर दिया गया यद्यपि उसका चीन से व्यापार एवं चाय के व्यापार पर अधिकार बना रहा।

(ii) कंपनी के भागीदारों को भारतीय राजस्व से 10.5 प्रतिशत लाभांश दिये जाने की व्यवस्था की गयी।

(iii) कंपनी को अगले 20 वर्षों के लिये भारतीय प्रदेशों तथा राजस्व पर नियंत्रण का अधिकार दे दिया गया। किंतु स्पष्ट कर दिया गया कि इससे इन प्रदेशों का क्राउन के प्रभुत्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

(iv) नियंत्रण बोर्ड की शक्ति को परिभाषित किया गया तथा उसका विस्तार भी कर दिया गया।

(v) ईसाई धर्म प्रचारकों को आज्ञा प्राप्त करके भारत में धर्म-प्रचार के लिये आने की सुविधा प्राप्त हो गयी।

ब्रिटिश व्यापारियों तथा इंजीनियरों को भारत आने तथा यहां बसने की अनुमति प्रदान कर दी गयी लेकिन इसके लिये उन्हें संचालन मंडल या नियंत्रण बोर्ड से लाइसेंस लेना आवश्यक था।

1833 का चार्टर अधिनियम

इस अधिनियम में निम्नलिखित प्रावधान थे:

(i) चाय का व्यापार तथा चीन के साथ व्यापार करने संबंधी कंपनी के अधिकार को समाप्त कर दिया गया।

(ii) अंग्रेजों को बिना अनुमति-पत्र के ही भारत आने तथा रहने की आज्ञा दे दी गयी। वे भारत में भूमि भी खरीद सकते थे।

(iii) भारत में सरकार का वित्तीय, विधायी तथा प्रशासनिक रूप केंद्रीयकरण करने का प्रयास किया गया।

(iv) बंगाल के साथ मद्रास, बंबई तथा अन्य अधिकृत प्रदेशों को गवर्नर-जनरल के नियंत्रण में रख दिया गया।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

(v) बंगाल का गवर्नर-जनरल, भारत का गवर्नर-जनरल हो गया।

(vi) सपरिषद गवर्नर-जनरल को ही भारत के लिए कानून बनाने का अधिकार दिया गया और मद्रास और बंबई की कानून बनाने की शक्ति समाप्त कर दी गयी।

(vii) इस अधिनियम द्वारा स्पष्ट कर दिया गया कि कंपनी के प्रदेशों में रहने वाले किसी भारतीय को केवल धर्म, वंश, रंग या जन्म स्थान इत्यादि के आधार पर कंपनी के किसी पद से जिसके वह योग्य हो, वंचित नहीं किया जायेगा।

(viii) भारत में दास-प्रथा को गैर-कानूनी घोषित कर दिया तथा गवर्नर-जनरल को निर्देश दिया कि वह भारत से दास प्रथा को समाप्त करने के लिये आवश्यक कदम उठाये (1843 में दास प्रथा उन्मूलन किया गया)।

1853 का चार्टर अधिनियम

इस अधिनियम में निम्नलिखित प्रावधान थेः

(i) कार्यकारिणी परिषद के "कानून सदस्य" को परिषद का पूर्ण सदस्य बना दिया गया।

(ii) निदेशक मण्डल में सदस्यों की संख्या 24 से कम कर 18 कर दी गयी तथा इनमें से 6 सदस्यों को नियुक्त करने का अधिकार ब्रिटिश राजा को प्रदान किया गया। निदेशक मण्डल के सदस्यों के लिए योग्यता विहित की गयी।

(iii) बंगाल के लिये पृथक् लेफ्टिनेंट-गवर्नर की नियुक्ति की गयी।

(iv) कम्पनी के कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए प्रतियोगी परीक्षा की व्यवस्था की गयी।

(v) कंपनी को भारतीय प्रदेशों को 'जब तक संसद चाहे' तब तक के लिए अपने अधीन रखने की अनुमति दे दी गयी।

(vi) गवर्नर जनरल को अपनी परिषद के उपाध्यक्ष की नियुक्ति का अधिकार प्रदान किया गया।

1858 का भारत शासन अधिनियम

1784 के 'पिट्स इंडिया एक्ट' से नियंत्रण-मण्डल की स्थापना द्वारा क्रमिक कम्पनी पर नियंत्रण की जो प्रक्रिया प्रारंभ हुई थी, वह 1853 में पूरी हो गई। 1853 के चार्टर में कम्पनी को शासन के लिए चूंकि किसी निश्चित अवधि के लिए प्राधिकृत नहीं किया गया था, इसलिए किसी भी समय सत्ता का हस्तांतरण ब्रिटिश क्राउन को हो जाने की सम्भावना बनती थी। 1857 की क्रांति ने शासन की असंतोषजनक नीतियां उजागर कर दी थीं, जिससे संसद को कम्पनी को पदच्युत करने का बहाना मिल गया। इस अधिनियम द्वारा:

(i) भारत का शासन ब्रिटेन की संसद को दे दिया गया।

(ii) अब भारत का शासन, ब्रिटिश साम्राज्ञी की ओर से भारत राज्य सचिव को चलाना था, जिसकी सहायता के लिए 15 सदस्यीय भारत परिषद का गठन किया गया। अब भारत के शासन से संबंधित सभी कानूनों एवं कार्यवाहियों पर भारत सचिव की स्वीकृति अनिवार्य कर दी गयी।

(iii) भारत परिषद् के 15 सदस्यों में से 7 सदस्यों की नियुक्ति का अधिकार सम्राट तथा शेष सदस्यों के चयन का अधिकार कंपनी के डायरेक्टरों को दे दिया गया।

(iv) अखिल भारतीय सेवाओं तथा अर्थव्यवस्था से सम्बद्ध मसलों पर भारत सचिव, भारत परिषद् की राय मानने को बाध्य था।

(v) भारत के गवर्नर-जनरल को भारत सचिव की आज्ञा के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य कर दिया गया।

(vi) अब गवर्नर-जनरल भारत में क्राउन के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करने गा तथा उसे 'वायसराय' की उपाधि दी गयी।

(vii) संरक्षण-ताज, सपरिषद् राज्य सचिव तथा भारतीय अधिकारियों में गया।

(viii) अनुबद्ध सिविल सेवा में नियुक्तियां खुली प्रतियोगिता द्वारा की लगीं।

(ix) भारत राज्य सचिव एक निगम निकाय घोषित किया गया, जिस पर इंग्लैंड एवं भारत में दावा किया जा सकता था अथवा जो दावा दायर कर सकता था।

भारतीय परिषद् अधिनियम, 1861

इस अधिनियम में यह उपबंध किया गया कि गवर्नर-जनरल की कार्यकारी परिषद, जो अभी तक अनन्य रूप से सरकारी अधिकारियों का एक समूह थी, उस समय जब परिषद् विधान परिषद के रूप में विधायी कार्य करेगी, इसमें कुछ गैर-सरकारी सदस्य भी सम्मिलित किए जाएंगे। किंतु यह परिषद किसी लोक-प्रतिनिधि संस्था से किसी भी रूप में समान न थी। इसमें सदस्य मनोनीत किए जाते थे, जिनका कार्य गवर्नर-जनरल द्वारा उनके समक्ष रखे गए प्रस्तावों पर केवल विचार-विमर्श करने तक सीमित था। साथ ही ये किसी भी रीति से प्रशासनिक कार्यों की आलोचना का अधिकार नहीं रखते थे।

भारतीय परिषद् अधिनियम 1892

इस अधिनियम के निम्नलिखित प्रावधान थेः

(i) भारत सरकार की विधि निर्मात्री संस्था में अतिरिक्त सदस्य 10 से 16 तक। कम-से-कम 40 प्रतिशत सदस्यों का गैर-सरकारी होना जरूरी।

(ii) बम्बई, मद्रास, बंगाल की परिषदों में अतिरिक्त सदस्यों की संख्या 8 से लेकर 20 तक। उत्तरी-पश्चिमी प्रांत में 15 सदस्य।

(iii) गैर-सरकारी सदस्यों को नियुक्त करने के लिए विशुद्ध नामांकन के स्थान पर सिफारिश के आधार पर नामांकन की पद्धति लागू।

(iv) विधि निर्मात्री संस्थाओं को प्रश्न पूछने तथा बजट पर बहस करने का अधिकार सीमित रूप में प्राप्त।

समीक्षाः इस अधिनियम में बहुत-सी त्रुटियां थीं, जिनके कारण भारतीय राष्ट्रवादी इससे असंतुष्ट रहे व भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने एक्ट की बार-बार आलोचना की। यह माना गया कि स्थानीय निकायों को चुनाव मण्डल बनाना एक प्रकार से इनके द्वारा मनोनीत करना ही है। विधानमण्डलों की शक्तियां भी बहुत ही सीमित थीं। सदस्य अनुपूरक प्रश्न नहीं पूछ सकते थे। किसी प्रश्न का उत्तर देने से इनकार किया जा सकता था। कुछ वर्गों को कोई प्रतिनिधित्व नहीं मिला था तथा कुछ को अत्यधिक। बम्बई में दो स्थान यूरोपीय व्यापारियों को दिए गए भारतीय व्यापारियों को एक भी नहीं। दो स्थान सिंध को दे दिए गए, पूना औ सतारा को एक भी नहीं।

भारतीय परिषद् अधिनियम, 1909 (मॉर्ले-मिंटो सुधार)

भारत के तत्कालीन सचिव लॉर्ड मॉर्ले और वाइसराय लॉर्ड मिंटो के नाम प्रतिनिधिक और लोकप्रियता के क्षेत्र में किए गए सुधारों का समावेश 19 भारतीय परिषद् अधिनियम में किया गया।

इन सुधारों को प्रस्तुत करने के पीछे दो घटनायें मुख्य थीं। अक्टूब में आगा खां के नेतृत्व में एक मुस्लिम प्रतिनिधिमंडल वायसराय लॉर्ड मिला और मांग की कि मुसलमानों के लिये पृथक् निर्वाचन प्रणाली की की जाये तथा मुसलमानों को उनकी जनसंख्या के अनुपात में प्रतिनि जाये। मुस्लिम लीग ने मुसलमानों को साम्राज्य के प्रति निष्ठा प्रक शिक्षा दी।

इस अधिनियम के मुख्य प्रावधान निम्नलिखित थेः

(i) इस अधिनियम के अनुसार, केंद्रीय एवं प्रांतीय विधा निर्वाचित सदस्यों की संख्या में वृद्धि कर दी गयी। प्रांतीय विध गैर-सरकारी बहुमत स्थापित किया गया। किंतु गैर-सरकारी सद एवं बिना चुने सदस्यों की संख्या अधिक थी, जिसके कारण की तुलना में अभी भी उनकी संख्या अधिक बनी रही।

(ii) केंद्रीय व्यवस्थापिका सभा में 60 सदस्य और 9 पद इन 69 सदस्यों में से 37 सरकारी अधिकारी और 32 गैर- से 5 नामांकित एवं 27 चुने हुये सदस्य थे। निर्वाचित 27 पृथक् निर्वाचन क्षेत्र के अंतर्गत मुस्लिमों के लिए आरक्षित

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

ब्रिटिश पूंजीपतियों के लिए तथा 2 सीटें जमींदारों के लिए आरक्षित थीं और 13 सीटें सामान्य निर्वाचन के अंतर्गत आती थीं।

(iii) सभी निर्वाचित सदस्य अप्रत्यक्ष रूप से चुने जाते थे। स्थानीय निकायों से निर्वाचन परिषद् का गठन होता था। ये प्रांतीय विधान परिषदों के सदस्यों का निर्वाचन करती थीं। प्रांतीय विधान परिषदों के सदस्य केंद्रीय व्यवस्थापिका के सदस्यों का निर्वाचन करते थे।

(iv) सर्वप्रथम पहली बार पृथक् निर्वाचन व्यवस्था का प्रारम्भ किया गया। साथ ही मुसलमानों को प्रतिनिधित्व के मामले में विशेष रियायत दी गयी। उन्हें केंद्रीय एवं प्रांतीय विधान परिषद में जनसंख्या के अनुपात में अधिक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया।

(v) गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में एक भारतीय सदस्य को नियुक्त करने की व्यवस्था की गयी। पहले भारतीय सदस्य के रूप में सत्येंद्र सिन्हा को नियुक्त किया गया।

(vi) इस अधिनियम द्वारा विधान परिषदों के विचार-विमर्श के कृत्यों में भी वृद्धि हुई। इससे उन्हें यह अवसर दिया गया कि वे बजट या लोकहित के किसी विषय पर संकल्प प्रस्तावित करके प्रशासन की नीति पर प्रभाव डाल सकें। कुछ विनिर्दिष्ट विषय इसके बाहर थे, जैसे—सशस्त्र बल, विदेश संबंध और देशी रियासतें।

समीक्षाः इस अधिनियम के अंतर्गत जो चुनाव पद्धति अपनायी गयी, वह इतनी अस्पष्ट थी कि जन-प्रतिनिधित्व प्रणाली एक प्रकार की बहुत-सी छननियों में से छानने की क्रिया बन गयी। कुछ लोग स्थानीय निकायों का चुनाव करते थे, ये सदस्य चुनाव मंडलों का चुनाव करते थे और ये चुनाव मंडल प्रांतीय परिषदों के सदस्यों का चुनाव करते थे। सुधारों को कार्यान्वित करते हुये बहुत-सी गड़बड़ियां उत्पन्न हो गयीं। संसदीय प्रणाली तो दे दी गयी परंतु उत्तरदायित्व नहीं दिया गया, जिससे सरकार की विवेकहीन तथा उत्तरदायी प्रक्रिया की आलोचना की जाने लगी।

1909 के सुधारों से जनता को केवल 'नाममात्र' के सुधार ही प्राप्त हुये, वास्तविक रूप से कुछ नहीं। इससे प्रभाव तो मिला पर शक्ति नहीं।

मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड प्रतिवेदन और भारत शासन अधिनियम, 1919

उस के तत्कालीन सेक्रेटरी ऑफ स्टेट श्री इ.एस. मोंटेग्यू और गवर्नर-जनरल श्री चेम्सफोर्ड को ब्रिटिश भारत में उत्तरदायी सरकार स्थापित करने की 20 अगस्त, 1917 की ब्रिटिश सरकार की घोषणा को कार्यरूप देने का कार्य सौंपा गया। भारत शासन अधिनियम 1919 में इनकी सिफारिशों को एक विधिक रूप दिया गया। उक्त अधिनियम में निम्नलिखित व्यवस्थाएं की गईं:

1. प्रांतीय सरकारः द्वैध-शासन प्रणाली का आरंभः

(क) कार्यपालिकाः (i) वर्ष 1919 के अधिनियम की सबसे मुख्य विशेषता यह थी कि प्रांतों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना के लिये द्वैध शासन व्यवस्था की गयी। इस प्रणाली के जन्मदाता सर लियोनिल कॉर्टिश थे, इस व्यवस्था को मोंटेग्यू तथा चेम्सफोर्ड ने अपना कर प्रांतीय सरकारों में पूर्ण स्थान दिया। यह द्वैध शासन के आधार पर प्रांतीय कार्यकारिणी परिषद को दो भागों में विभक्त किया गया। पहले भाग में गवर्नर तथा उसकी कार्यकारिणी के सदस्य तथा दूसरे भाग में गवर्नर तथा उसके मंत्रीगण थे।

प्रांतीय विषयों को दो भागों में विभाजित किया गया—(क) आरक्षित तथा (ख) हस्तांतरित विषय। आरक्षित विषयों में सभी महत्वपूर्ण विषय, जैसे—व्यवस्था, वित्त, भू-राजस्व, सिंचाई, खनिज संसाधन, प्रशासन, आबकारी इत्यादि सम्मिलित थे। आरक्षित विषयों का शासन कार्यकारी परिषद के परामर्श से तथा हस्तांतरित विषयों का मंत्री के परामर्श से करता था।

गवर्नर व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी थे तथा यदि व्यवस्थापिका उनके किसी प्रस्ताव पारित कर दे, तो उन्हें त्याग-पत्र देना पड़ता था, जबकि कार्यकारी परिषद के सदस्य व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी नहीं थे।

(iv) प्रांतों में संवैधानिक तंत्र के विफल होने पर गवर्नर राज्य के प्रशासन एवं हस्तांतरित विषयों का दायित्व अपने ऊपर ले सकता था।

(v) भारत सचिव तथा गवर्नर-जनरल आवश्यकता पड़ने पर 'आरक्षित विषयों' में हस्तक्षेप कर सकते थे, किंतु 'हस्तांतरित विषयों' में उन्हें हस्तक्षेप करने की शक्ति नहीं थी।

(ख) व्यवस्थापिकाः (i) प्रांतीय व्यवस्थापिका सभाओं की सदस्य संख्या में बहुत वृद्धि कर दी गयी। इन सदस्यों में 70 प्रतिशत सदस्य निर्वाचित होते थे।

(ii) मताधिकार में वृद्धि कर दी गयी तथा साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति का और ज्यादा विस्तार कर दिया गया।

(iii) महिलाओं को भी वोट देने का अधिकार प्रदान किया गया।

(iv) प्रांतीय व्यवस्थापिका सभायें किसी भी प्रस्ताव को प्रस्तुत कर सकती थीं, किंतु उसे पारित होने के लिये गवर्नर की सहमति अनिवार्य थी। गवर्नर को प्रस्तावों को अस्वीकार करने तथा अध्यादेश जारी करने का अधिकार था।

(v) व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्य बजट को अस्वीकार कर सकते थे, किंतु गवर्नर आवश्यक समझे तो सदस्यों की अनुमति के बिना भी उसे पास कर सकता था।

(vi) प्रांतीय परिषदों को अब विधान परिषदों की संज्ञा दी गई।

2. केंद्रीय सरकारः अनुत्तरदायी शासन की व्यवस्था यथावतः

(क) कार्यपालिकाः (i) गवर्नर-जनरल मुख्य कार्यपालिका अधिकारी था।

(ii) सभी विषयों को दो भागों में बांटा गया—केंद्रीय एवं प्रांतीय।

(iii) गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी के 8 सदस्यों में 3 भारतीय नियुक्त किये गये और उन्हें विधि, शिक्षा, श्रम, स्वास्थ्य तथा उद्योग विभाग सौंप दिए गए।

(iv) प्रांतों के 'आरक्षित विषयों' में गवर्नर-जनरल को पूर्ण अधिकार प्राप्त था।

(v) गवर्नर-जनरल को मांगों पर कटौती का अधिकार था। साथ ही वह केंद्रीय व्यवस्थापिका द्वारा अस्वीकार किये गये प्रस्तावों को पारित कर अध्यादेश जारी कर सकता था।

(ख) व्यवस्थापिकाः (i) केंद्रीय व्यवस्थापिका को द्विसदनीय संस्था बना दिया गया—केंद्रीय विधान सभा तथा राज्य परिषद। केंद्रीय विधान सभा निम्न सदन थी तथा राज्य परिषद उच्च सदन।

केंद्रीय विधान सभा की सदस्य संख्या 145 थी जिसमें 104 निर्वाचित तथा 41 मनोनीत किये जाने की व्यवस्था थी। 104 निर्वाचित सदस्यों में से—52 सामान्य, 30 मुसलमान, 2 सिख तथा 20 विशेष सदस्य थे; जबकि उच्च सदन या राज्य परिषद की सदस्य संख्या 60 थी, जिसमें 26 मनोनीत एवं 34 निर्वाचित थे। 34 निर्वाचित सदस्यों में 20 सामान्य, 10 मुसलमान, 3 यूरोपीय और 1 सिख था।

(ii) सदस्य प्रश्न पूछ सकते थे, अनुपूरक मांगें प्रस्तुत कर सकते थे, स्थगन प्रस्ताव ला सकते थे तथा बजट को अस्वीकार कर सकते थे। किंतु अभी भी बजट का 75 प्रतिशत हिस्सा सदस्यों की सहमति के बिना भी पारित किया जा सकता था।

(iii) राज्य परिषद का कार्यकाल 5 वर्ष था तथा केवल पुरुष ही इस सदस्य बन सकते थे, जबकि केंद्रीय विधान सभा का कार्यकाल 3 वर्ष था गवर्नर-जनरल की इच्छा पर बढ़ाया भी जा सकता था।

(iv) कुछ भारतीय सदस्यों को सरकार की स्थायी समितियों, जैसे- समिति अथवा सार्वजनिक लेखा समिति में नियुक्त किया गया।

साइमन आयोग

भारत में व्याप्त परिस्थितियों की जांच करने और उन पर अपना प्रति हेतु तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमंत्री बाल्डविन ने 8 नवम्बर, 1927 को साइमन की अध्यक्षता में एक सात सदस्यीय संवैधानिक आयोग की नि इस आयोग में एक भी भारतीय को सदस्य नहीं बनाया गया था, जि

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

ने स्वयं को काफी अपमानित और आहत महसूस किया और सम्पूर्ण देश ने आयोग का एक स्वर में विरोध किया। इसके विरोध में किए गए प्रदर्शन के दौरान पुलिस द्वारा किए गए लाठी चार्ज के फलस्वरूप लाला लाजपत राय की मृत्यु हो गई।

साइमन आयोग ने 1930 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसमें आयोग द्वारा प्रांतों में प्रतिनिधि सरकार की सिफारिश तो की गई थी लेकिन केंद्र में प्रतिनिधि सरकार की स्थापना को अनिश्चित काल हेतु स्थगित रखा गया था। रिपोर्ट में 1919 के अधिनियम द्वारा लागू द्वैध शासन प्रणाली समाप्त करने की संस्तुति की गई थी।

1935 का भारत सरकार अधिनियम

भारत में सांविधानिक विकास की जो प्रक्रिया 1861 से आरम्भ हुई थी, उसका अंतिम चरण 1935 का 'भारत सरकार अधिनियम' था।

ब्रिटिश संसद ने अगस्त 1935 में भारत सरकार अधिनियम, 1935 पारित किया। इस अधिनियम के मुख्य प्रावधान निम्नानुसार थे:

(i) इस अधिनियम के अनुसार, प्रस्तावित संघ में सभी ब्रिट्रिश भारतीय प्रांतों, मुख्य आयुक्त के प्रांतों तथा सभी भारतीय प्रांतों का सम्मिलित होना अनिवार्य था किंतु देशी रियासतों का सम्मिलित होना वैकल्पिक था। इसके लिये दो शर्तें थीं–

- रियासत के प्रतिनिधियों में न्यूनतम आधे प्रतिनिधि चुनने वाली रियासतें संघ में सम्मिलित न हों
- रियासतों की कुल जनसंख्या में से आधी जनसंख्या वाली रियासतें संघ में सम्मिलित न हों। जिन शर्तों पर इन सभी रियासतों को संघ में सम्मिलित होना था, उनका उल्लेख एक पत्र में किया जाना था। चूंकि ऐसा नहीं हो सका इसलिये यह संघ कभी अस्तित्व में नहीं आया तथा 1946 तक केंद्र सरकार, भारत सरकार अधिनियम, 1919 के प्रावधानों के अनुसार ही चलती रही।

(ii) गवर्नर-जनरल केंद्र में समस्त संविधान का केंद्र विंदु था।

(iii) प्रशासन के विषयों को दो भागों में विभक्त किया गया–सुरक्षित एवं हस्तांतरित। सुरक्षित विषयों में विदेशी मामले, रक्षा, जनजातीय क्षेत्र तथा धार्मिक मामले थे, जिनका प्रशासन गवर्नर-जनरल को कार्यकारी पार्षदों की सलाह पर करना था। कार्यकारी पार्षद, केंद्रीय व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी नहीं थे। हस्तांतरित विषयों में वे सभी अन्य विषय सम्मिलित थे, जो सुरक्षित विषयों में सम्मिलित नहीं थे। इन विषयों का प्रशासन गवर्नर जनरल को उन मंत्रियों की सलाह से करना था, जिनका निर्वाचन व्यवस्थापिका द्वारा किया गया था। ये मंत्री केंद्रीय व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी थे तथा अविश्वास प्रस्ताव पारित होने पर उन्हें त्याग-पत्र देना अनिवार्य था।

(iv) देश की वित्तीय स्थिरता, भारतीय साख की रक्षा, भारत या उसके किसी भाग में शांति की रक्षा, अल्पसंख्यकों, सरकारी सेवकों तथा उनके आश्रितों की रक्षा, अंग्रेजी तथा बर्मी माल के विरुद्ध किसी भेदभाव से उसकी रक्षा, भारतीय राजाओं के हितों एवं सम्मान की रक्षा तथा अपनी निजी विवेकाधीन शक्तियों की रक्षा इत्यादि के संबंध में गवर्नर-जनरल को व्यक्तिगत निर्णय लेने का अधिकार था।

(v) संघीय विधान मंडल (व्यवस्थापिका) द्विसदनीय होना था, जिसमें राज्य परिषद (उच्च सदन) तथा संघीय सभा (निम्न सदन) थी। राज्य परिषद एक स्थायी सदन था, जिसके एक-तिहाई सदस्य प्रत्येक 3 वर्ष के पश्चात् चुने जाने थे। इसकी अधिकतम सदस्य संख्या 260 होनी थी, जिसमें से 156 प्रांतों के चुने हुये प्रतिनिधि और अधिकतम 104 रियासतों के प्रतिनिधि होने थे, जिन्हें सम्बद्ध राजाओं को मनोनीत करना था। संघीय सभा का कार्यकाल पांच वर्ष होना था। इसके सदस्यों में से 250 प्रांतों के और अधिकाधिक 125 सदस्य रियासतों के होने थे। रियासतों के सदस्य सम्बद्ध राजाओं द्वारा मनोनीत किये जाने थे, जबकि ब्रिटिश प्रांतों के सदस्य प्रांतीय विधान परिषदों द्वारा चुने जाने थे।

(vi) यह एक अत्यंत विचित्र व्यवस्था थी तथा साधारण प्रचलन के विपरीत थी कि उच्च सदन के सदस्यों का चुनाव सीधे मतदाताओं द्वारा किया जाये तथा निम्न सदन, जो ज्यादा महत्वपूर्ण था, सदस्यों का चुनाव अप्रत्यक्ष तरीके से हो।

(vii) इसी प्रकार राजाओं को उच्च सदन के 40 प्रतिशत तथा निम्न सदन के 33 प्रतिशत सदस्य मनोनीत करने थे।

(viii) समस्त विषयों का बंटवारा तीन सूचियों में किया गया–केंद्रीय सूची, राज्य सूची तथा समवर्ती सूची।

(ix) संघीय सभा के सदस्य मंत्रियों के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव नहीं लाया जा सकता था।

(x) धर्म एवं जाति-आधारित निर्वाचन व्यवस्था को आगे भी जारी रहने देने की व्यवस्था की गयी।

(xi) संघीय बजट का 75 प्रतिशत भाग ऐसा था, जिस पर विधानमंडल मताधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता था।

(xii) प्रांतों को स्वायत्तता प्रदान कर दी गयी।

(xiii) प्रांतों को स्वायत्तता एवं पृथक् विधिक पहचान बनाने का अधिकार दिया गया।

(xiv) प्रांतों को भारत सचिव एवं गवर्नर-जनरल के 'आलाकमान वाले आदेशों' से मुक्त कर दिया गया। इस प्रकार अब वे प्रत्यक्ष और सीधे तौर पर ब्रिटिश क्राउन के अधीन आ गये।

(xv) प्रांतों को स्वतंत्र आर्थिक शक्तियां एवं संसाधन दिये गये। प्रांतीय सरकारें अपनी स्वयं की साख पर धन उधार ले सकती थीं।

(xvi) गवर्नर प्रांत में ताज का मनोनीत प्रतिनिधि होता था, जो महामहिम ताज (Crown) की ओर से समस्त कार्यों का संचालन एवं नियंत्रण करता था।

(xvii) गवर्नर को अल्पसंख्यकों, लोक सेवकों के अधिकार, कानून एवं व्यवस्था, ब्रिटेन के व्यापारिक हितों तथा देशी रियासतों इत्यादि के संबंध में विशेष शक्तियां प्राप्त थीं।

(xviii) यदि गवर्नर यह अनुभव करे कि प्रांत का प्रशासन संवैधानिक उपबंधों के अनुरूप नहीं चलाया जा रहा है तो प्रशासन का भार वह अपने हाथों में ले सकता था।

(xix) साम्प्रदायिक तथा अन्य वर्गों को पृथक् प्रतिनिधित्व दिया गया। अधिनियम के मतदाता मंडलों का निर्धारण साम्प्रदायिक निर्णय तथा पूना समझौते के अनुसार किया गया।

(xx) प्रांतीय विधान मंडलों का आकार तथा रचना विभिन्न प्रांतों में भिन्न-भिन्न थी। अधिकांश प्रांतों में यह एक सदनीय तथा कुछ प्रांतों में यह द्विसदनीय थी। द्विसदनीय व्यवस्था में उच्च सदन विधानपरिषद तथा नि सदन-विधान सभा थी।

(xxi) सभी सदस्यों का निर्वाचन सीधे तौर पर होता था। मताधिका वृद्धि की गयी। पुरुषों के समान महिलाओं को भी मताधिकार प्रदान किया

(xxii) सभी प्रांतीय विषयों का संचालन मंत्रियों द्वारा किया जात ये सभी मंत्री एक प्रमुख (मुख्यमंत्री) के अधीन कार्य करते थे।

(xxiii) मंत्री अपने विभाग के कार्यों के प्रति जवाबदेह व्यवस्थापिका में उनके विरुद्ध मतदान कर उन्हें हटाया जा सकता थ

मूल्यांकनः संघ बनाने की योजना को कार्यान्वित नहीं किया जा केंद्रीय सरकार, 1919 के अधिनियम के अनुसार ही चलती रही। फिर बैंक और संघीय न्यायालय क्रमशः 1935 तथा 1937 में स्थापित क और प्रांतीय स्वायत्तता 1 अप्रैल, 1937 को अस्तित्व में आई।

अगस्त प्रस्ताव

अक्टूबर-नवम्बर 1939 में प्रांतीय मंत्रिमंडलों ने त्यागपत्र दे दिया भी कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार की ओर दोस्ती का हाथ बढ़ाया राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की मांग को अंग्रेजों के समक्ष रख सरकार ने इस मांग की अवहेलना कर दी। भारतीयों की मांग लिनलिथगो ने 8 अगस्त, 1940 को एक प्रस्ताव रखा, जो नाम से जाना जाता है। इस प्रस्ताव में निम्न प्रावधान थे:

(i) भारत के लिये डोमिनियन स्टेट्स मुख्य लक्ष्य।

(ii) भारतीयों को सम्मिलित कर युद्ध सलाहकार प

(iii) वायसराय की कार्यकारिणी परिषद का विस्तार

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

(iv) युद्ध के पश्चात् संविधान सभा का गठन किया जायेगा, जिसमें मुख्यतया भारतीय अपने सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक धारणाओं के अनुरूप संविधान के निर्माण की रूपरेखा सुनिश्चित करेंगे। संविधान ऐसा होगा कि रजा, अल्पसंख्यकों के हित, राज्यों से संघीय तथा अखिल भारतीय सेवायें इत्यादि मुद्दों पर भारतीयों के अधिकार का पूर्ण ध्यान रखा जायेगा।

(v) अल्पसंख्यकों को आश्वस्त किया गया कि सरकार ऐसी किसी संस्था को शासन नहीं सौंपेगी, जिसके विरुद्ध सशक्त मत हो।

(vi) उक्त आधारों पर भारतीय, सरकार को सहयोग प्रदान करेंगे।

वायसराय लॉर्ड लिनलिथगो का यह प्रस्ताव भारतीयों में भ्रामक स्थिति पैदा करने वाला था। इस प्रस्ताव द्वारा द्वितीय विश्व युद्ध में भारतीयों का समर्थन प्राप्त करने की कोशिश की जा रही थी और उसके द्वारा भारतीयों में साम्प्रदायिकता का जहर घोला जा रहा था। इसलिए, कांग्रेस ने इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया। मुस्लिम लीग ने भी इस प्रस्ताव का विरोध किया, क्योंकि इस प्रस्ताव में पृथक् पाकिस्तान को स्वीकृति नहीं दी गई थी।

क्रिप्स मिशन

जब द्वितीय महायुद्ध निर्णायक दौर से गुजर रहा था और जापान भारत के द्वार तक पहुंच गया, तब मार्च 1942 में ब्रिटिश सरकार ने प्रस्तावों की घोषणा के प्रारूप के साथ कैबिनेट मंत्री सर स्टेफोर्ड क्रिप्स को भारत भेजा।

सर क्रिप्स द्वारा प्रस्तुत किए गए मुख्य प्रस्ताव इस प्रकार थे:

(i) भारत के संविधान की रचना भारत के लोगों द्वारा निर्वाचित संविधान सभा करेगी।

(ii) संविधान भारत को डोमिनियन प्रास्थिति और ब्रिटिश राष्ट्रकुल में बराबरी की भागीदारी देगा।

(iii) सभी प्रांतों और देशी रियासतों को मिलाकर एक संघ बनेगा।

(iv) कोई प्रांत या देशी रियासत जो संविधान को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हो तो तत्समय विद्यमान अपनी संवैधानिक स्थिति बनाए रखने के लिए स्वतंत्र होगा और इस प्रकार सम्मिलित न होने वाले प्रांतों से ब्रिटिश सरकार अलग संवैधानिक व्यवस्था कर सकेगी।

किंतु इन प्रस्तावों को दोनों राजनीतिक दलों ने अस्वीकार कर दिया। मुस्लिम लीग ने इन प्रस्तावों को इसलिए अस्वीकार कर दिया क्योंकि देश का साम्प्रदायिक आधार पर विभाजन करने की उसकी मांग को नामंजूर कर दिया गया था। इधर कांग्रेस ने इन प्रस्तावों को मानने से इसलिए अस्वीकार किया क्योंकि इसमें भारत को छोटे-छोटे टुकड़ों में बांटने की संभावनाओं के लिए द्वार खोल दिया गया था और युद्ध के दौरान भारतीय प्रतिनिधियों को वास्तव में प्रभावी सत्ता का हस्तांतरण करने का कोई प्रावधान नहीं किया गया था। इस प्रकार क्रिप्स मिशन पूर्णतः असफल हो गया।

राजगोपालाचारी फॉर्मूला, 1944

राजगोपालाचारी द्वारा कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग के बीच सहयोग बढाने के लिए 10 जुलाई, 1944 को एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया, जिसे 'राजगोपालाचारी फॉर्मूला' के नाम से जाना जाता है। यह फॉर्मूला अप्रत्यक्ष रूप से पृथक् पाकिस्तान की अवधारणा पर आधारित प्रस्ताव था।

इस प्रस्ताव की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार थीं:

(i) मुस्लिम लीग भारतीय स्वतंत्रता की मांग का समर्थन करे।

(ii) प्रांतों में अस्थायी सरकारों की स्थापना के कार्य में मुस्लिम लीग कांग्रेस के साथ सहयोग करे।

(iii) युद्ध की समाप्ति के उपरांत एक कमीशन द्वारा उत्तर-पूर्वी तथा उत्तर-पश्चिमी भारत में उन क्षेत्रों को निर्धारित किया जाए, जिसमें मुसलमान स्पष्ट बहुमत में हैं। उन क्षेत्रों में जनमत सर्वेक्षण कराया जाए तथा उसके आधार यह निश्चित किया जाए कि वे भारत से पृथक् होना चाहते हैं या नहीं।

(iv) देश के विभाजन की स्थिति में आवश्यक विषयों—प्रतिरक्षा, वाणिज्य, तथा आवागमन इत्यादि के संबंध में दोनों राष्ट्रों के मध्य कोई संयुक्त ना किया जाये।

(v) ये बातें उसी स्थिति में स्वीकृत होंगी, जब ब्रिटेन भारत को पूर्ण तथा से स्वतंत्र घोषित कर देगा।

इस प्रस्ताव को भी मुस्लिम लीग ने अस्वीकार कर दिया। हिंदू नेताओं ने भी इसकी तीव्र आलोचना की। अंततः यह फॉर्मूला भी असफल साबित हुआ।

वेवल योजना

द्वितीय विश्व युद्ध में ब्रिटेन तथा उसके सहयोगी देशों के विजयी घोषित किए जाने के उपरांत भारत के तात्कालिक वायसराय लॉर्ड वेवल द्वारा 25 जून, 1945 को शिमला में भारतीय नेताओं का एक सम्मेलन आयोजित किया गया। शिमला सम्मेलन में वेवल द्वारा एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया। इस प्रस्ताव में कहा गया कि जब तक भारतीय स्वयं अपना संविधान नहीं बना लेते तब तक अंतरिम व्यवस्था के रूप में 'अधिशासी परिषद' का भारतीयकरण कर दिया जाएगा। किंतु इसमें भारतीय राजनेताओं को, मुसलमानों तथा सवर्ण हिंदुओं के बीच समानता के आधार पर प्रतिनिधित्व दिया जाएगा तथा उसमें दलित वर्गों एवं सिखों का एक-एक प्रतिनिधि होगा। गवर्नर जनरल तथा सेनाध्यक्ष के अतिरिक्त सभी पद भारतीयों को सौंपे जाएंगे।

मुस्लिम लीग ने इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया क्योंकि इसमें विभाजन के लिए कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं किया गया था। कांग्रेस ने भी इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया क्योंकि इसमें हिंदुओं और मुसलमानों के प्रतिनिधित्व का अनुपात समान था। अंततः वार्ता विफल रही।

कैबिनेट मिशन

वेवेल योजना के विफल हो जाने के पश्चात फरवरी 1946 में ब्रिटेन के प्रधानमंत्री एटली ने भारत में राजनीतिक गतिरोध दूर करने हेतु एक तीन सदस्यीय उच्चस्तरीय शिष्टमंडल भेजने की घोषणा की। इस शिष्टमण्डल में ब्रिटिश कैबिनेट के तीन सदस्य थे—लॉर्ड पैथिक लॉरेंस (भारत सचिव), सर स्टैफर्ड क्रिप्स (व्यापार बोर्ड के अध्यक्ष) तथा ए.वी. अलेक्जेंडर (एडमिरैलिटी के प्रथम लॉर्ड अथवा नौसेना मंत्री)। इस मिशन को विशिष्ट अधिकार दिए गए थे तथा इसका कार्य भारत को शांतिपूर्ण सत्ता हस्तांतरण हेतु उपायों एवं सम्भावनाओं की तलाश करना था। कैबिनेट मिशन मार्च 1946 से मई 1946 तक भारत में रहा।

कैबिनेट मिशन के प्रस्ताव इस प्रकार थे—(i) ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों को मिलाकर एक भारतीय संघ का गठन किया जाएगा। संघ के पास तीन विभाग होंगे—विदेश, रक्षा और संचार। इन विभागों के लिए धन जुटाने का अधिकार संघ को होगा।

(ii) संघ की एक कार्यपालिका तथा विधायिका होगी जिसमें ब्रिटिश भारत तथा देशी रियासतों के प्रतिनिधि होंगे।

(iii) संघ से संबंधित विषयों के अतिरिक्त सभी विषय तथा सभी अवशिष्ट अधिकार प्रांतों में निहित होंगे।

(iv) प्रांतों को कार्यपालिका तथा विधायिका के साथ समूह बनाने की छूट होगी और प्रत्येक समूह सर्वसामान्य प्रांतीय विषयों का निर्धारण कर सकता है।

(v) सभी दलों की सहायता से जल्द ही एक अंतरिम सरकार की स्थापना की जाएगी, जिसमें सभी विभाग भारतीय नेताओं के पास रहेंगे।

(vi) देश का संविधान बनाने के लिए एक संविधान सभा का गठन किया जाएगा।

(vii) संघ तथा समूहों के संविधानों में एक ऐसी व्यवस्था होगी जिसके द्वारा कोई भी प्रांत अपनी विधान सभा के बहुमत से 10 वर्ष की प्रारंभिक अवधि के बाद और उसके पश्चात् प्रत्येक दस वर्ष के अंतराल में संविधान की शर्तों पर पुनर्विचार करने के लिए कह सके।

कैबिनेट मिशन ने इस बात को स्पष्ट कर दिया कि इसका उद्देश्य किसी संविधान का विवरण निर्धारित करना नहीं है बल्कि उस तंत्र को सक्रिय बनाना है, जिसके द्वारा भारतीयों के लिए संविधान तय किया जा सके।

एटली की घोषणा (20 फरवरी, 1947)

20 फरवरी, 1947 को ब्रिटेन के प्रधानमंत्री क्लीमेंट एटली द्वारा की गयी घोष के मुख्य तथ्य हैं:

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

(i) अंग्रेज सरकार 30 जून, 1948 तक भारतवासियों को सत्ता सौंप देगी।
(ii) यदि इस तिथि तक संविधान नहीं बन सका तो उस स्थिति में ब्रिटिश सम्राट की सरकार यह विचार करेगी कि निश्चित तिथि को ब्रिटिश शासित भारत की केंद्रीय सरकार की सत्ता किसको सौंपी जाये। क्या ब्रिटिश भारत की केंद्रीय सरकार के किसी रूप को अथवा कुछ भागों में वर्तमान प्रांतीय सरकारों को अथवा किसी अन्य ढंग से जो सर्वाधिक न्यायसंगत एवं भारतीयों के सर्वाधिक हित में हो, सत्ता दी जाये?
(iii) लार्ड वेवेल के स्थान पर लार्ड माउंटबेटन को भारत का नया वायसराय नियुक्त किया गया।

एटली की उपर्युक्त घोषणा में पाकिस्तान के निर्माण का भाव निहित था। साथ ही यह घोषणा राज्यों के बाल्कनीकरण एवं क्रिप्स प्रस्तावों के समर्थन का आभास दे रही थी।

भारतीयों को सत्ता हस्तांतरण हेतु तिथि का निर्धारण क्यों?: (i) सरकार को आशा थी कि सत्ता हस्तांतरण के लिये तिथि निर्धारित करने पर भारत के राजनीतिक दल मुख्य समस्या के समाधान हेतु सहमत हो जाएंगे।
(ii) सरकार तत्कालीन संवैधानिक संकट को टालना चाहती थी।
(iii) सरकार इस बात को स्वीकार कर चुकी थी कि भारत से उसकी वापसी तथा भारतवासियों को सत्ता हस्तांतरण अपरिहार्य हो चुका है।

कांग्रेस की प्रतिक्रिया: कांग्रेस ने स्वायत्तशासी उपनिवेशों को सत्ता हस्तांतरित करने की योजना को इसलिये स्वीकार कर लिया क्योंकि इससे भारत के अधिक विखंडित होने की संभावना समाप्त हो गयी। इस योजना में प्रांतों एवं देशी रियासतों को अलग से स्वतंत्रता देने का कोई प्रावधान नहीं था। साथ ही तत्कालीन प्रांतीय व्यवस्थापिकायें स्वयं अपने क्षेत्रों के लिये संविधान का निर्माण कर सकती थीं तथा इससे गतिरोध को समाप्त करने में मदद मिलने की उम्मीद थी।

लेकिन शीघ्र ही मुस्लिम लीग के प्रयासों से कांग्रेस की यह उम्मीद धूल-धूसरित हो गयी। लीग ने पंजाब की गठबंधन सरकार के विरुद्ध आंदोलन प्रारंभ कर दिया तथा समझौते की संभावनाएं नगण्य दिखने लगीं।

कांग्रेस द्वारा संविधान सभा में शामिल होने तथा मुस्लिम लीग द्वारा अपनी स्वीकृति वापस ले लेने के कारण वायसराय ने लीग के प्रतिनिधित्व के बिना ही कार्यकारिणी समिति का गठन कर लिया। वायसराय द्वारा उठाए गए इस कदम को अनुचित बताते हुए मुस्लिम लीग ने विरोध स्वरूप 16 अगस्त, 1946 को 'प्रत्यक्ष कार्रवाई दिवस' का आह्वान किया।

अंतरिम सरकार का गठन

24 अगस्त 1946 को अंतरिम राष्ट्रीय सरकार के गठन की घोषणा की गई। इसमें पंडित जवाहर लाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, डॉ. राजेंद्र प्रसाद, आसफ अली, शरतचंद्र बोस, डॉ. जॉन मथाई, सर शराफत अहमद खां, जगजीवन राम, सरदार बलदेव सिंह, सैयद अली जहीर, सी. राजगोपालाचारी और डॉ. सी. एच. भाभा शामिल किये गये।

जवाहर लाल के नेतृत्व में उनके ग्यारह सहयोगियों के साथ 2 सितम्बर, 1946 को अंतरिम सरकार का गठन किया गया। इसमें मुस्लिम लीग के सदस्य शामिल नहीं हुए। हालांकि उनके शामिल होने के लिए विकल्प खुला रखा गया था। अंततः 26 अक्टूबर, 1946 को जब सरकार का पुनर्गठन किया गया तब मुस्लिम लीग के पांच प्रतिनिधियों को शामिल करके आरंभ में लिए गए तीन सदस्यों—सैयद अली जहीर, शरतचंद्र बोस और सर शफात अहमद खां को परिषद से बाहर कर दिया गया।

अंतरिम सरकार में शामिल होने के बावजूद भी मुस्लिम लीग ने 'संविधान सभा' में शामिल होने से इंकार कर दिया। मुस्लिम लीग की अनुपस्थिति में ही 1 दिसम्बर, 1946 को डॉ. राजेंद्र प्रसाद की अध्यक्षता में संविधान सभा का ठन कर दिया गया। मुस्लिम लीग ने इस संविधान सभा का विरोध किया और लग पाकिस्तान की मांग को और अधिक प्रखर रूप में रखा।

राजनीतिक गतिरोध को दूर करने के लिए ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली ने 20 फरवरी, 1947 को एक ऐतिहासिक घोषणा करते हुए कहा कि भारतीय राजनैतिक दलों के आपसी मतभेद, संविधान सभा के कार्य में योजनाबद्ध तरीके से बाधा डालते हैं। इस राजनैतिक अनिश्चितता को देखते हुए जून 1948 तक राजसत्ता भारत के जिम्मेदार लोगों को सौंप दी जाएगी।

माउंटबेटन योजना

देश में सांप्रदायिक हिंसा और गृह युद्ध की स्थिति की तीव्रता को देखते हुए 3 जून, 1947 को भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड लुई माउंटबेटन की अध्यक्षता में भारत और पाकिस्तान के बीच बंटवारे के प्रश्न पर कांग्रेस और मुस्लिम लीग के नेताओं के साथ एक योजना तैयार की गयी, जिसे 'माउंटबेटन योजना' के नाम से जाना जाता है।

इस योजना के अंतर्गत हस्तांतरण प्रक्रिया को सुगम बनाने तथा दोनों मुख्य सम्प्रदायों का समायोजन करने के लिए देश को दो भागों भारत और पाकिस्तान, में विभाजित करने का परामर्श दिया गया।

योजना की मुख्य बातें इस प्रकार हैं—बंगाल और पंजाब की प्रांतीय विधान सभाओं को यह कहा जाए कि वे दो भागों में अधिविष्ट हों। एक भाग में मुस्लिम बहुमत वाले जिलों के प्रतिनिधि होंगे और दूसरे भाग में शेष प्रांत के। दोनों भागों के सदस्य पृथक् रूप से बैठकर इस बात के लिए मतदान देंगे कि क्या उस प्रांत का विभाजन किया जाए। यदि दोनों में सादे बहुमत से विभाजन के पक्ष में निर्णय होता है तो प्रत्येक विधान सभा का वह भाग उन क्षेत्रों के बारे में जिनका वह प्रतिनिधित्व करता है वह निर्णय करेगा कि क्या वह विद्यमान संविधान सभा में सम्मिलित होगा या पृथक् संविधान सभा में।

उपर्युक्त योजना के अनुसार दोनों प्रांतों (पश्चिम पंजाब और पूर्वी बंगाल) के मुस्लिम बहुमत वाले क्षेत्रों के प्रतिनिधियों ने विभाजन और नए पाकिस्तान में शामिल होने के पक्ष में मतदान किया। पश्चिमी-सीमा प्रांत और सिलहट में जनमत पाकिस्तान के पक्ष में गया। 26 जुलाई, 1947 को माउंटबेटन ने पाकिस्तान के लिए अलग संविधान सभा की स्थापना की घोषणा की।

भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947

माउंटबेटन की 3 जून,1947 की योजना पर दोनों समुदायों द्वारा सहमति प्रदान करने के उपरांत ब्रिटिश संसद ने उक्त योजना के आधार पर भारतीय स्वतंत्रता विधेयक का प्रारूप तैयार किया और इस विधेयक को ब्रिटिश संसद द्वारा बहुमत से पारित करके भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 के नाम से स्थापित किया गया। 18 जुलाई, 1947 को इस अधिनियम पर सम्राट द्वारा स्वीकृति प्रदान की गई।

माउंटबेटन योजना के आधार पर, ब्रिटिश संसद द्वारा पारित किये गये भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 के मुख्य प्रस्ताव अग्रलिखित हैं:

(i) इस अधिनियम में यह उपबंध किया गया कि 15 अगस्त, 1947 से दो स्वतंत्र डोमिनियन स्थापित किए जाएंगे, जो भारत और पाकिस्तान के नाम से जाने जाएंगे।

(ii) बंगाल तथा पंजाब के दो-दो प्रांत बनाए जाने का प्रस्ताव किया गया। पाकिस्तान को मिलने वाले क्षेत्रों को छोड़कर ब्रिटिश भारत में सम्मिलित सभी प्रांत भारत में सम्मिलित माने गए।

(iii) पूर्वी बंगाल, पश्चिमी पंजाब, सिंध और असम का सिलहट जि पाकिस्तान में सम्मिलित होना था।

(iv) भारत में महामहिम की सरकार का उत्तरदायित्व तथा भार रियासतों पर महामहिम का अधिराजस्व 15 अगस्त, 1947 को समाप्त हो जा

(v) प्रत्येक डोमिनियन के लिए पृथक् गवर्नर जनरल होगा औ महामहिम द्वारा नियुक्त किया जाएगा, जो डोमिनियन की सरकार के प के लिए महामहिम का प्रतिनिधित्व करेगा।

(vi) भारत तथा पाकिस्तान के विधानमंडलों को कुछ विषयों बनाने का पूर्ण अधिकार होगा तथा इसमें ब्रिटिश संसद कोई ह कर सकेगी।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

(vii) भारत सरकार अधिनियम, 1935 तब तक इन दोनों डोमिनियन राज्यों का शासन चलाने में सहायता देगा, जब तक कि नये संविधान दोनों राज्यों द्वारा अपना नहीं लिये जाते। अनिवार्यता के अनुसार अधिनियम में परिवर्तन भी किया जा सकता है लेकिन इसके लिए गवर्नर-जनरल की स्वीकृति आवश्यक होगी।

(viii) उन समस्त संधियों एवं अनुबंधों को रद्द कर दिया जाएगा जो महामहिम की सरकार तथा भारतीय राजाओं के मध्य हुए थे। शाही उपाधि से 'भक्त का सम्राट' शब्द समाप्त हो जाएगा।

(ix) भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम को क्रियान्वित करने के लिए गवर्नर-जनरल को अस्थायी आदेश जारी करने का अधिकार प्रदान किया गया।

(x) अंततः, इसमें 'सेक्रेटरी ऑफ स्टेट' की सेवाओं तथा भारतीय सशस्त्र बल, ब्रिटिश स्थल सेना, नौसेना और वायु सेना पर महामहिम की सरकार का अधिकार क्षेत्र अथवा प्राधिकार जारी रहने की शर्तें निर्दिष्ट की गई थीं।

इस प्रकार, भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 के अनुसार, 14-15 अगस्त को पाकिस्तान तथा भारत-दो डोमिनियनों का गठन कर दिया गया।

ब्रिटिश विरासत

भारतीय जीवन पर अंग्रेजी राज्य के प्रभाव के विषय में वाद-विवाद उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आरंभ हुआ और आज भी जारी है। भारतीय जीवन में जो भी राजनीतिक, प्रशासकीय, आर्थिक, सामाजिक तथा बौद्धिक परिवर्तन पिछले दो सौ वर्षों में देखने को मिले, वे अंग्रेजों ने परोपकार की भावना से प्रेरित होकर नहीं किए, अपितु वे तो साम्राज्यवादी शासकों के भारत पर और भी अधिक सुदृढ़ नियंत्रण स्थापित करने के लिए किए गए प्रयत्नों के परिणामस्वरूप थे। भारत में परिवर्तन पाश्चात्य प्रभाव से आए, अंग्रेजों की लगभग अनिच्छा से आए। वे तो इन परिवर्तनों की गति को मात्र धीमा ही कर सके।

एक दृढ़ केंद्रीय सरकार के अधीन भारत की राजनीतिक एकता स्थापित होना संभवतः अंग्रेजी राज्य की सबसे प्रमुख देन थी। साम्राज्यवाद का निष्ठुर तर्कपूर्ण रूप तब प्रकट हुआ जब हिमालय से कन्याकुमारी तक तथा चट्टगांव से खैबर तक समस्त प्रदेश अंग्रेजों के अधीन हो गया। ब्रिटेन ने भारत को शांति भी प्रदान की। इनके पास आंतरिक एवं बाहरी रक्षा के लिए एक मजबूत सेना थी। साथ ही शांति व्यवस्था कायम रखने के लिए एक बेहतर पुलिस दल भी था। इस मजबूत सेना एवं पुलिस का प्रयोग आंदोलनों को कुचलने में भी किया जाता था। भारतीय राष्ट्रवाद की भावना के कारण साम्राज्यवादी शासकों को समस्त देश के लिए एक सी प्रशासन प्रणाली स्थापित करने पर बाध्य होना पड़ा और उन्होंने सैनिक संरक्षण तथा आर्थिक शोषण के लिए सड़कों, रेलों तथा डाकतार की सुचारू व्यवस्था स्थापित की। इससे भारत में एकता स्थापित हुई और एकता की भावना जागृत हुई। आंग्ल शिक्षित मध्यम वर्ग का उदय हुआ और समाचार पत्रों का विकास हुआ। इन सभी ने राष्ट्रवाद, जातीयता, राजनीतिक अधिकार इत्यादि आधुनिक धारणाओं को बढ़ावा दिया और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस जैसी संपूर्ण भारत के लिए एक राजनीतिक संस्था के लिए आधार बनाया। अंग्रेजों ने संसदीय प्रणाली आरंभ की जिसके तहत पूर्वी निरंकुशवाद का स्थान अंग्रेजी निरंकुशवाद ने ले लिया। उपनिवेशवादी शासकों ने अंग्रेजी निरंकुशवाद को एक संवैधानिक रूप देकर इसे संवैधानिक निरंकुशवाद बना दिया।

भारत में ब्रिटिश प्रशासन की निम्नलिखित विरासत आज भी देखी जा सकती है-

- संसदीय शासन और संघीय ढांचा एक महत्वपूर्ण ब्रिटिश विरासत है। प संसदीय लोकतंत्र पर भारत के नए संविधान की शासन व्यवस्था आधारित इसे हमने ब्रिटेन से प्राप्त किया है।
- ब्रिटिश प्रशासन के अंतर्गत प्रशासन की प्रत्येक इकाई में एक ऐसा ारी होता था जिसके ऊपर पूरी जिम्मेदारी थी, जैसे मण्डल में मण्डलायुक्त, कलक्टर या डिप्टी कमिश्नर, सब-डिवीजन में सब-डिवीजनल अधिकारी ील में तहसीलदार होता था। आज भी स्वतंत्र भारत में जिला प्रशासन सी ब्रिटिश विरासत का ऋणी है।

1-C-2

ब्रिटिश शासन की एक अन्य विरासत इण्डियन सिविल सर्विस थी। इस्पात की इस चौखट ने ब्रिटिश साम्राज्य को एक ऐसा प्रशासन दिया जो अपनी कार्यकुशलता एवं संगठन के लिए पूरे विश्व में विख्यात है। इसमें मात्र एक अच्छी नौकरी की ही सुनिश्चितता नहीं थी, अपितु गहरे सम्मान भी शामिल था। भारत में स्वतंत्रता पश्चात आई.ए.एस. को जारी रखा गया है।

- भारत में प्रचलित स्थानीय स्वशासन की रूपरेखा ब्रिटिश साम्राज्य से ही प्राप्त हुई है। हालांकि इसमें स्वतंत्रता पश्चात मौलिक अंतर आया है और इसका स्वरूप वस्तुतः लोकतांत्रिक बना है।
- स्वतंत्र भारत में न्याय प्रशासन और कानून के शासन की अवधारणा भी ब्रिटिश विरासत है। लार्ड कॉर्नवालिस ने न्याय व्यवस्था को संगठित किया था। बेंटिक के काल में लार्ड मैकाले की अध्यक्षता में एक विधि आयोग का गठन किया गया। इस आयोग ने प्राच्य और पश्चिमी देशों में प्रचलित कानूनों के आधार पर भारतीय दंड संहिता तैयार की, जो अंग्रेजों की कानून व्यवस्था की मुख्य आधार थी।
- प्रशासन में सचिवालय और निदेशालय प्रणाली तथा लोक सेवा में सामान्यज्ञ की प्रधानता ब्रिटिश काल से अब तक निरंतर जारी है।
- अंग्रेजी उदारवादी शिक्षा से कुछ आंतरिक विरोध उत्पन्न हुए। आधुनिक राजनीतिक जागृति, राजनीतिक संस्थानों की स्थापना एवं राजनीतिक आंदोलनों का चलना, अंग्रेजी शिक्षा का उतना ही परिणाम था जितना कि साम्राज्यवादी नीतियों के विरोध स्वरूप। यह अंग्रेजी शिक्षित वर्ग ही था जिसने अंग्रेजी राज्य के सच्चे स्वरूप का भंडा-फोड़ किया तथा आधुनिक राजनीतिक आंदोलनों के लिए नेतृत्व प्रदान किया। यदि इस प्रकाश में देखा जाए तो मैकाले की शिक्षा पद्धति का लाभ ही हुआ।
- भारतीय सामाजिक जीवन में पश्चिमी प्रभाव अधिक व्यापक है। इसने कला, स्थापत्य कला, चित्रकला, साहित्य, काव्य, नाटक तथा उपन्यास, यहां तक कि भारतीय धर्मों तथा दर्शन को भी प्रभावित किया है। इन क्षेत्रों में मार्गदर्शक तो अंग्रेजी सार्वजनिक अधिकारी तथा साहित्यकार थे और यह भावना आगे ले जाने वाला मुख्यतः अंग्रेजी शिक्षित वर्ग था जिसमें प्रायः पत्रकार, अध्यापक, वकील तथा डाक्टर थे जो भारतीय सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाओं के अगुआ थे। इसी प्रकार सरकार का उत्तरदायित्व, काम का अधिकार, रोटी तथा मकान, सामाजिक सुरक्षण, मजदूरों को संगठित करने का अधिकार, विधि के सम्मुख समानता, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास इत्यादि का अधिकार अब भारतीय जीवन का अंग बन चुके हैं।

क्योंकि भारत में सत्ता का हस्तांतरण ब्रिटिश हाथों से भारत एवं पाकिस्तान नामक दो राष्ट्रों को किया गया था अतः स्वाभाविक रूप से पूर्ववर्ती विशेषताएं आज भी दृष्टव्य हैं। स्वतंत्र भारत एक ही झटके में अंग्रेजी साम्राज्यवाद की दो शताब्दियों के प्रभाव को समाप्त नहीं कर सकता। निःसंदेह अंग्रेज भारत में अमिट छाप, चाहे वह अच्छी है अथवा बुरी है, प्रत्येक भारतीय पक्ष पर छोड़ गए हैं। जिस प्रकार मुगलकालीन फारसी भाषा का आज भी राजस्व तथा न्याय प्रशासन में प्रभाव दिखाई पड़ता है उसी प्रकार अंग्रेजों द्वारा विकसित कानून, नियम, प्रक्रियाएं तथा परम्पराएं भारतीय लोक प्रशासन में परिलक्षित होती हैं। अंग्रेज साम्राज्यवादियों ने औपनिवेशिक संस्थाओं, अर्थव्यवस्था, समाज, यहां तक कि विचारधारा का एक नया ढांचा खड़ा कर दिया था। राजनीति से प्रेरित जाति प्रथा, सांप्रदायिकता, प्रदेशवाद इत्यादि, जिनको लोगों ने अपने साम्राज्य को जीवित रखने तथा दीर्घ करने के लिए बढ़ावा दिया, आज भी हमारे लिए कठिन चुनौतियां हैं। ब्रिटिश शासन द्वारा प्रारंभ अखिल भारतीय एवं अन्य लोक सेवाएं, सचिवालयी व्यवस्थाएं, नौकरशाही की कठोर प्रणाली, संघीय व्यवस्था एवं राष्ट्रीय एकता, प्रशासनिक अनामता तथा गोपनीयता, कमेटी प्रणाली, जिला प्रशासन राजस्व प्रशासन, पुलिस प्रशासन, वित्तीय प्रशासन तथा स्थानीय स्वशासन इत्यादि व्यवस्थाएं आज भी भारतीय प्रशासन में मौजूद हैं। आर्थिक जीवन की अनेक जटिल समस्याएं हमें अंग्रेजी साम्राज्य की शोषक प्रकृति का सदैव स्मरण कराती रहती हैं। इसके अतिरिक्त विकृत आधुनिकता ने कई अन्य जटिलताएं, शिक्षित बेकारी, उत्पन्न कर दी हैं।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

2. संविधान का निर्माण

किसी भी स्वाधीन राष्ट्र की शासन व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए उपयुक्त दिशा-निर्देशों की आवश्यकता होती है और इन दिशा-निर्देशों का एकमात्र स्रोत उस देश का संविधान होता है, जो कि उस देश की सर्वोच्च मौलिक विधि भी होती है। अतः एक अच्छा संविधान ही राष्ट्र के सम्पूर्ण विकास में भरपूर सहायता एवं योगदान दे सकता है, जिसे उस देश की जनता ने स्वयं बनाया हो अर्थवा उक्त देश की संविधान-निर्मात्री सभा द्वारा बनाया गया हो। संविधान-निर्मात्री सभा द्वारा संविधान का निर्माण स्वाधीन राष्ट्र का लक्षण है। निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा संविधान के निर्माण सम्बन्धी अधिकार की मांग का प्रत्यक्ष सम्बन्ध 'स्वाधीनता की मांग' से है।

संविधान सभा की पृष्ठभूमि

जब किसी प्रभुता संपन्न लोकतांत्रिक राष्ट्र द्वारा संविधान की रचना का कार्य उसकी जनता के प्रतिनिधि निकाय द्वारा किया जाता है, तो संविधान पर विचार करने तथा उसे स्वीकार करने के लिए जनता द्वारा चुने गए इस प्रकार के निकाय को 'संविधान सभा' कहा जाता है। पूर्ण प्रभुसत्ता सम्पन्न राष्ट्रों में जहां कहीं भी लिखित संविधान है, उनका निर्माण जनता ने प्रायः संविधान सभाओं के माध्यम से ही किया है। संविधान सभा की प्रेरणा का स्रोत 17वीं और 18वीं शताब्दी की लोकतांत्रिक क्रांतियां हैं। इन क्रांतियों ने इस विचार को जन्म दिया कि शासन के मूलभूत कानूनों का निर्माण नागरिकों की एक विशिष्ट प्रतिनिधि सभा द्वारा किया जाना चाहिए।

भारत में संविधान सभा की परिकल्पना सदैव राष्ट्रीय आंदोलन के विकास के साथ जुड़ी रही। भारत की संविधान सभा का निश्चित उल्लेख, भले ही इन शब्दों में न किया गया हो किंतु भारत शासन अधिनियम, 1919 के लागू होने के पश्चात् 1922 में महात्मा गांधी ने इस तथ्य का उल्लेख किया था।

जनवरी 1925 में दिल्ली में हुए सर्वदलीय सम्मेलन के समक्ष 'कॉमनवेल्थ ऑफ इंडिया विल' को प्रस्तुत किया गया, जिसकी अध्यक्षता महात्मा गांधी ने की थी। उल्लेखनीय है कि, भारत के लिए एक संवैधानिक प्रणाली की रूपरेखा प्रस्तुत करने का यह प्रथम प्रमुख प्रयास था।

19 मई, 1928 को बंबई में आयोजित सर्वदलीय सम्मेलन में भारत के संविधान के सिद्धांत निर्धारित करने के लिए मोतीलाल नेहरू के सभापतित्व में एक समिति गठित की गई। 10 अगस्त, 1928 को प्रस्तुत की गई इस समिति की रिपोर्ट को 'नेहरू रिपोर्ट' के नाम से भी जाना जाता है। उल्लेखनीय है कि, संसद के प्रति उत्तरदायी सरकार, न्यायपालिका द्वारा प्रवर्तनीय मौलिक अधिकार, अल्पसंख्यक वर्गों के अधिकार सहित मोटे तौर पर जिस संसदीय व्यवस्था की संकल्पना 1928 की नेहरू रिपोर्ट में व्यक्त की गई थी। इसे लगभग ज्यों-का-त्यों 21 वर्ष बाद 20 नवंबर, 1949 को संविधान सभा द्वारा अंगीकृत स्वाधीन भारत के संविधान में समाविष्ट कर लिया गया।

जून 1934 में कांग्रेस कार्यकारिणी ने घोषणा की कि श्वेत-पत्र का एकमात्र विकल्प यह है कि वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित संविधान सभा द्वारा एक संविधान तैयार किया जाए। यह पहला अवसर था जब संविधान सभा के लिए औपचारिक रूप से एक निश्चित मांग प्रस्तुत की गयी।

1940 के 'अगस्त प्रस्ताव' में ब्रिटिश सरकार ने संविधान सभा की मांग पहली बार अधिकारिक रूप से स्वीकार किया, भले ही स्वीकृति अप्रत्यक्ष महत्वपूर्ण शर्तों के साथ थी। यद्यपि 1942 का क्रिप्स मिशन पूर्णतः असफल हुआ, फिर भी उसमें संविधान सभा बनाने की बात को स्वीकार कर लिया था।

अंततः कैबिनेट मिशन, 1946 द्वारा संविधान निर्माण के लिए एक बुनियादी का प्रारूप प्रस्तुत किया गया। कैबिनेट मिशन ने संविधान-निर्माण निकाय अपनायी जाने वाली प्रक्रिया को कुछ विस्तारपूर्वक निर्धारित किया, जो कार है:

1. प्रत्येक प्रांत को और प्रत्येक देशी रियासत या रियासतों के समूह को अपनी जनसंख्या के अनुपात में कुल स्थान आवंटित किये गए। स्थूल रूप से 10 लाख के लिए एक स्थान का अनुपात निर्धारित किया गया। इसके परिणामस्वरूप प्रांतों को 292 सदस्य निर्वाचित करने थे और देशी रियासतों को कम से कम 93 स्थान दिए गए।
2. प्रत्येक प्रांत के स्थानों को जनसंख्या के अनुपात के आधार पर तीन प्रमुख समुदायों में बांटा गया। ये समुदाय थे—मुस्लिम, सिख और साधारण।
3. प्रांतीय विधान सभा में प्रत्येक समुदाय के सदस्यों को एकल संक्रमणीय मत से आनुपातिक प्रतिनिधित्व के अनुसार अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करना था।
4. देशी रियासतों के प्रतिनियियों के चयन की पद्धति परामर्श से तय की जानी थी।

3 जून 1947 की योजना के अंतर्गत विभाजन के परिणामस्वरूप पाकिस्तान के लिए एक पृथक् संविधान सभा गठित की गई। बंगाल, पंजाब, सिंध, पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत, बलूचिस्तान और असम के सिलहट जिले (जो जनमत संग्रह द्वारा पाकिस्तान में सम्मिलित हुए थे) के प्रतिनिधि भारत की संविधान सभा के सदस्य नहीं रहे। पश्चिमी बंगाल और पूर्वी पंजाब के प्रांतों में नए निर्वाचन किए गए। परिणामस्वरूप जब संविधान सभा 31 अक्टूबर, 1947 को पुनः समवेत हुई तो सदन की सदस्यता घटकर 299 हो गई। इसमें से 284 सदस्य 26 नवंबर, 1949 को वास्तव में उपस्थित थे और उन्होंने अंतिम रूप से पारित संविधान पर अपने हस्ताक्षर किए।

संविधान सभा की रचना

संविधान सभा सदस्य-संख्या की दृष्टि से एक काफी बड़ी सभा थी। कैबिनेट मिशन ने उसके सदस्यों की कोई अधिकतम संख्या निर्धारित नहीं की थी। कैबिनेट मिशन का प्रस्ताव था कि हर दस लाख की आबादी के लिए एक प्रतिनिधि होना चाहिए। एक फॉर्मूले के अनुसार संविधान सभा में प्रांतों के अधिक-से-अधिक 296 सदस्य हो सकते थे और देशी राज्यों के 93।

चुनावों के पश्चात् संविधान सभा में उत्पन्न दलीय स्थिति इस प्रकार थी:

कांग्रेस	208
मुस्लिम लीग	73
यूनियनिस्ट	1
यूनियनिस्ट मुस्लिम	1
यूनियनिस्ट अनुसूचित जातियां	1
कृषक प्रजा	1
अनुसूचित जाति परिसंघ	1
सिख (गैर-कांग्रेसी)	1
साम्यवादी	8
स्वतंत्र	296
कुल	

चुनावों के पश्चात् अपनी निर्बल स्थिति देखकर मुस्लिम लीग ने संविध सभा के बहिष्कार का निश्चय किया तथा 9 दिसम्बर, 1946 को आहूत संवि सभा के प्रथम अधिवेशन में मुस्लिम लीग ने भाग नहीं लिया। लीग ने पाकिस्तान के लिए बिल्कुल पृथक् संविधान सभा की मांग करनी आरम्भ दी। कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार द्वारा लीग को अपनी हठधर्मिता त्याग किए गए सभी प्रयास निरर्थक सिद्ध हुए।

पाकिस्तान के निर्माण और मुस्लिम लीग द्वारा संविधान सभा के के कारण सदस्य-संख्या गिर गई। उसमें प्रांतों के केवल 235 और देश के 73 प्रतिनिधि रह गए। संविधान के अंतिम मूल मसौदे पर इन्हीं ने हस्ताक्षर किए थे।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

संविधान सभा की प्रकृति

संविधान सभा की प्रभुसत्ता का प्रश्नः संविधान सभा के गठन और उसके द्वारा अपना कार्य प्रारंभ किए जाने के तुरंत बाद संविधान सभा की स्थिति के संबंध में एक विवाद प्रारंभ हो गया। विंस्टन चर्चिल ने संविधान सभा की वैधता को ही चुनौती दे दी। संविधान सभा के ही एक सदस्य एम.आर. जयकर ने भी विचार व्यक्त किया कि "संविधान सभा एक सम्प्रभु संस्था नहीं है और उसकी शक्तियां मूलभूत सिद्धांतों एवं प्रक्रियाओं दोनों ही दृष्टियों से मर्यादित है।" उनके विचार का आधार यह था कि संविधान सभा कैबिनेट योजना के अधीन अस्तित्व में आई और यह ब्रिटिश संसद की सत्ता के ही अधीन है। वह कैबिनेट मिशन योजना में वर्णित संविधान की मूल रूपरेखा में कोई परिवर्तन नहीं कर सकती है। सभा का आह्वान ब्रिटिश सम्राट के अधिकार पर गवर्नर जनरल द्वारा किया गया था और यह अपेक्षित था कि संविधान सभा जो संविधान बनाएगी उसे ब्रिटिश संसद के पास अनुमोदन के लिए भेजा जाएगा, लेकिन संविधान सभा के अधिकांश सदस्यों ने इन प्रतिबंधों को अस्वीकार करते हुए संविधान सभा की सम्प्रभुसत्ता पर बल दिया। इस अवसर पर बोलते हुए जवाहरलाल नेहरू ने कहा था, "आजादी और ताकत के मिलते ही हमारी जिम्मेदारियां भी बढ़ गई हैं। संविधान सभा इन जिम्मेदारियों को निभायेगी। संविधान सभा एक पूर्ण प्रभुत्व-संपन्न संस्था है, वह देश के स्वतंत्र नागरिकों का प्रतिनिधित्व करती है"।

इस विचार के अनुसार ही संविधान सभा ने अपनी पूर्ण प्रभुता को प्रदर्शित किया—*प्रथम*, यह प्रस्ताव पारित किया गया कि ब्रिटिश सरकार या अन्य किसी भी सत्ता के आदेश से सभा का विघटन नहीं होगा। संविधान सभा को केवल तभी भंग किया जाएगा, जबकि सभा स्वयं दो-तिहाई बहुमत से इस आशय का प्रस्ताव पारित कर दे। *द्वितीय*, संविधान सभा ने सभा के संचालन की पूर्ण शक्ति अपने निर्वाचित सभापति को दे दी।

संविधान सभा की समितियां

संविधान को सफलतापूर्वक निर्मित करने के उद्देश्य हेतु संविधान सभा ने कुल 22 समितियों का गठन किया, जिनमें 10 कार्यविधिक मामलों संबंधी एवं 12 तात्विक मामलों की समितियां थीं—

कार्यविधिक मामलों संबंधी समिति

1. परिचालन समिति
2. नियम-निर्माण समिति
3. सदन समिति
4. उर्दू अनुवाद समिति
5. हिंदी अनुवाद समिति
6. भारतीय स्वाधीनता अधिनियम, 1947 के प्रभाव संबंधी समिति
7. कार्य संचालन समिति
8. वित्त एवं कार्मिक समिति
9. प्रमाण समिति
10. प्रेस गैलरी समिति

तात्विक मामलों संबंधी समिति

1. प्रारूप समिति (अध्यक्ष—बी.आर. अम्बेडकर)
2. प्रारूप समीक्षा समिति (अध्यक्ष—सर अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर)
3. समझौता समिति (अध्यक्ष—राजेंद्र प्रसाद)
4. संघ संविधान समिति (अध्यक्ष—जवाहरलाल नेहरू)
5. प्रांतीय संविधान समिति (अध्यक्ष—सरदार वल्लभ भाई पटेल)
6. मुख्य आयुक्त (प्रांत) समिति
7. मूल अधिकार एवं अल्पसंख्यक समिति (अध्यक्ष—सरदार वल्लभ भाई पटेल)
8. भाषायी प्रांत समिति
9. संघ शक्ति समिति (अध्यक्ष—जवाहरलाल नेहरू)
10. वित्तीय प्रावधानों संबंधी समिति
11. सर्वोच्च न्यायालय संबंधी तदर्थ समिति
12. राष्ट्रीय ध्वज संबंधी तदर्थ समिति

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

जिन्होंने भारत के विभाजन के बाद भारत में ही रहना पसंद किया उन्हें भी संविधान सभा की सदस्यता प्रदान की गई। लीग के एक प्रतिनिधि मोहम्मद सादुल्ला प्रारूप समिति के भी सदस्य थे।

कानून के प्रकाण्ड विद्वानों का बोलबाला: संविधान सभा में कानून के बहुत बड़े-बड़े पंडित विद्यमान थे, जैसे—कृष्णास्वामी अय्यर, के.एम. मुंशी और ठाकुरदास भार्गव। ये सभी व्यक्ति ब्रिटेन की संसदीय प्रणाली से बहुत ज्यादा प्रभावित थे। साथ ही वे 'न्यायिक समीक्षा' के सिद्धांत में भी आस्था रखते थे। वे मौलिक अधिकारों के भी जबर्दस्त समर्थक थे। अनुच्छेद 19 में दिए गए मौलिक अधिकारों पर "उचित प्रतिबंध" लगाये जा सकते हैं। 'उचित' शब्द का सुझाव ठाकुरदास भार्गव की ओर से आया था। इसमें कोई संदेह नहीं कि अकेले इस शब्द से प्रतिबंधों के स्वरूप में महत्वपूर्ण अंतर आ गया है। इसमें न्यायालयों की शक्ति का विस्तार हुआ है, क्योंकि न्यायालय यह निर्णय दे सकते हैं कि सरकार द्वारा लगाया गया अमुक प्रतिबंध 'उचित' नहीं है।

संविधान सभा का कार्य

संविधान सभा का प्रथम अधिवेशन 9 दिसम्बर, 1946 को संसद भवन के केंद्रीय कक्ष में संपन्न हुआ। डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा को सर्वसम्मति से संविधान सभा का अस्थायी अध्यक्ष चुन लिया गया। इसके पश्चात् 11 दिसम्बर, 1946 को कांग्रेस के नेता डॉ. राजेंद्र प्रसाद संविधान सभा के स्थायी अध्यक्ष निर्वाचित किए गए। 13 दिसम्बर, 1946 को जवाहरलाल नेहरू द्वारा उद्देश्य-प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया। इस प्रस्ताव में भारत के भावी प्रभुसत्तासम्पन्न लोकतांत्रिक गणराज्य की रूपरेखा प्रस्तुत की गई थी। इस प्रस्ताव में एक ऐसी संघीय राज्य व्यवस्था की परिकल्पना की गई थी, जिसमें अवशिष्ट शक्तियां स्वायत्त इकाइयों के पास होंगी और प्रभुसत्ता जनता के हाथों में। प्रस्ताव में सभी नागरिकों को 'सामाजिक, और राजनीतिक, न्याय, परिस्थिति की, अवसर की और कानून के समक्ष समानता, विचारधारा, अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था, पूजा, व्यवसाय, संगम और कार्य की स्वतंत्रता की गारण्टी प्रदान की गई थी। इसके साथ ही प्रस्ताव में 'अल्पसंख्यकों, पिछड़े एवं जनजातीय क्षेत्रों तथा दलितों एवं अन्य पिछड़े वर्गों के लिए भी पर्याप्त 'रक्षोपाय' रखे गए थे। विचार-विमर्श के बाद 22 जनवरी, 1947 को संविधान सभा के सदस्यों ने इसे सर्वसम्मति से पास कर दिया।

उद्देश्य प्रस्ताव की स्वीकृति के बाद संविधान सभा ने संविधान निर्माण की समस्या के विभिन्न पहलुओं के संबंध में अनेक समितियां नियुक्त कीं।

सम्पूर्ण संविधान निर्माण में 2 वर्ष, 11 मास और 18 दिन लगे। इस कार्य पर लगभग 64 लाख रुपये व्यय हुए। संविधान के प्रारूप पर 114 दिन तक चर्चा चली। अंतिम रूप में संविधान में 395 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियां कायम की गईं।

वास्तव में संविधान के प्रारूप में 7000 संशोधनों के लिए नोटिस मिले थे, लेकिन 2473 संशोधन ही प्रस्तुत किए गए थे। सभा की संपूर्ण कार्यवाही लोकतांत्रिक थी, सक्रिय वाद-विवाद के उपरांत ही इसकी प्रक्रिया पूरी की गई। संविधान की स्वीकृति के बाद संविधान के कुछ अनुच्छेद 26 नवंबर, 1949 के दिन से ही लागू कर दिए गए, जैसे— नागरिकता, निर्वाचन, अंतरिम संसद, अल्पकालिक एवं परवर्ती उपबंध, परंतु शेष संविधान को 26 जनवरी, 1950 से अस्तित्व में लाया गया। 26 जनवरी, 1950 से भारत एक गणराज्य के रूप में स्थापित हो गया।

3. संविधान की विशेषताएं

भारत का संविधान अनेक दृष्टियों से एक अनुपम संविधान है। भारतीय संविधान में अनेक ऐसे विशिष्ट लक्षण हैं, जो इसे विश्व के अन्य संविधानों से पृथक् पहचान प्रदान करते हैं।

संविधान के प्रमुख या स्पष्ट दिखाई देने वाले लक्षण संविधान की वे विशेष बातें होती हैं जिनसे उसकी अन्य संविधानों से भिन्नता प्रकट होती है। उल्लेखनीय है कि प्रमुख लक्षण का अर्थ आधारिक लक्षण नहीं होता। आधारिक लक्षण, संविधान के वे उपबंध हैं जिनका संशोधन नहीं किया जा सकता, या जिन्हें नष्ट नहीं किया जा सकता, या जिन पर प्रहार नहीं किया जा सकता। आधारिक लक्षणों का संशोधन नहीं किया जा सकता, यह सिद्धांत केशवानंद भारती मामले में प्रतिपादित किया गया था और इसका अनुसरण इसके पश्चात् अनेक मामलों में किया गया।

भारतीय संविधान की रूपरेखा

लिखित एवं विशाल संविधान

भारतीय संविधान का निर्माण एक विशेष संविधान सभा के द्वारा किया गया है और इस संविधान की अधिकांश बातें लिखित रूप में हैं। इस दृष्टिकोण से भारतीय संविधान, अमेरिकी संविधान के समतुल्य है। जबकि ब्रिटेन और इजरायल का विधान अलिखित है। भारतीय संविधान केवल एक संविधान नहीं है वरन् देश की धानिक और प्रशासनिक पद्धति के महत्वपूर्ण पहलुओं से संबंधित एक विस्तृत निक संहिता भी है। इसके अतिरिक्त भारतीय संविधान विश्व का सर्वाधिक क संविधान है। भारत के मूल संविधान में कुल 395 अनुच्छेद थे जो 22 भागों ाजित थे और इसमें 8 अनुसूचियां थीं। इनमें पश्चात्वर्ती संशोधनों द्वारा वृद्धि बहुत-से उपबंधों का निरसन करने के पश्चात् भी इसमें 450 से अधिक अनुच्छेद अनुसूचियां हैं, जबकि अमेरिका के संविधान में केवल 7, कनाडा के संविधान ऑस्ट्रेलिया के संविधान में 128 और दक्षिण अफ्रीका के संविधान में 253 ही हैं। संविधान के इतने विशाल होने के अनेक कारण हैं।

1. इसमें राज्य के प्रशासन से संबंधित उपबंध हैं। अमेरिकी संविधान इससे भिन्न है। वहां राज्यों ने अपने-अपने संविधान अलग से बनाए। हमारे संविधान में कनाडा का अनुसरण किया गया। हमारे संविधान में संघ और सभी राज्यों के संविधान हैं—जम्मू-कश्मीर को छोड़कर। जम्मू-कश्मीर को अपना संविधान बनाने की अनुमति दी गई। संविधान के उपबंध भी जम्मू-कश्मीर राज्य पर स्वतः लागू नहीं किए गए। वहां संविधान के उपबंध अनुच्छेद 370 के अधीन धीरे-धीरे लागू किए गए। इनमें से कुछ उपांतरित रूप में लागू किए गए।

2. संविधान में प्रशासनिक मामलों के बारे में विस्तार से उपबंध हैं। संविधान निर्माताओं की इच्छा थी कि यह एक विस्तारवान दस्तावेज हो और उनके सामने भारत शासन अधिनियम 1935 का दृष्टांत था। उसमें न्यायपालिका, लोक सेवा आयोग, निर्वाचन आयोग आदि के बारे में विस्तृत उपबंध रखे गए थे। डॉ. अंबेडकर ने इन प्रशासनिक बातों को सम्मिलित किए जाने को इस आधार पर उचित ठहराया था कि दुर्भाव से काम करने वाले व्यक्ति संविधान को छद्म रूप से भ्रष्ट न कर सकें।

3. भारत शासन अधिनियम, 1935 के अधिकांश उपबंध यथावत् अंगीकार कर लिए गए। 1935 का अधिनियम एक बहुत लंबा दस्तावेज था। उसे आदर्श मानकर उसका बहुत बड़ा भाग संविधान में समाविष्ट कर लिया गया। इससे संविधान की लंबाई बढ़ना स्वाभाविक था।

डॉ. अंबेडकर ने ऐसा करने के पक्ष में यह तर्क दिया था कि, भारत के लोग विद्यमान प्रणाली से परिचित हैं।

4. भारत की विशालता और समस्याओं की विविधता के कारण जन्मी समस्याओं का समाधान खोजना आवश्यक था। भारत कीं इन विशिष्ट समस्याओं के लिए जो उपबंध बनाए गए, उनके उदाहरण हैं—भाग 16, जो अनुसूचित जाति और जनजाति तथा पिछड़े वर्ग से संबंधित है। भाग 17, जो राजभाषा के बा में है। पांचवीं और छठी अनुसूचियां जो अनुसूचित क्षेत्र और जनजातियों संबंधित हैं।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

5. संविधान के प्रारंभ होने के पश्चात् नागालैंड, असम, मणिपुर, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, सिक्किम आदि की प्रादेशिक मांगों को देखते हुए बाद के वर्षों में अनु. 371क से लेकर 371ज अन्तर्विष्ट किए गए।

संसदीय प्रभुता तथा न्यायिक सर्वोच्चता में समन्वय

ब्रिटिश संसदीय प्रणाली में संसद को सर्वोच्च तथा प्रभुतासम्पन्न माना गया है। इसकी शक्तियों पर सिद्धान्त के रूप में कोई अवरोध नहीं है, क्योंकि वहां पर कोई लिखित संविधान नहीं है। किंतु अमेरिकी प्रणाली में, उच्चतम न्यायालय सर्वोच्च है क्योंकि उसे न्यायिक पुनरीक्षण तथा संविधान के निर्वचन की शक्ति प्रदान की गई है। भारतीय संविधान की एक विशेषता यह है कि संविधान में ब्रिटेन की संसदीय प्रभुसत्ता तथा संयुक्त राज्य अमेरिका की न्यायिक सर्वोच्चता के मध्य का मार्ग अपनाया गया है। ब्रिटेन में व्यवस्थापिका सर्वोच्च है और ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा निर्मित कानून को किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती। इसके विपरीत अमरीका के संविधान में न्यायपालिका की सर्वोच्चता के सिद्धांत को अपनाया गया है, जिसका तात्पर्य है कि न्यायालय संविधान का रक्षक और अभिभावक है। किंतु भारतीय संसद तथा उच्चतम न्यायालय, दोनों अपने-अपने क्षेत्र में सर्वोच्च हैं। जहां उच्चतम न्यायालय संसद द्वारा पारित किसी कानून को संविधान का उल्लंघन करने वाला बताकर संसद के अधिकार से बाहर, अवैध और अमान्य घोषित कर सकता है, वहीं संसद कतिपय प्रतिबंधों के अधीन रहते हुए संविधान के अधिकांश भागों में संशोधन कर सकती है।

संसदीय शासन प्रणाली

भारत का संविधान भारत के लिए संसदीय प्रणाली की शासन व्यवस्था का प्रावधान करता है। हालांकि भारत एक गणराज्य है और उसका अध्यक्ष राष्ट्रपति होता है किंतु यह मान्यता है कि अमरीकी राष्ट्रपति के विपरीत भारतीय राष्ट्रपति कार्यपालिका का केवल नाममात्र का या संवैधानिक अध्यक्ष होता है। वह यथार्थ राजनीतिक कार्यपालिका यानी मंत्रिपरिषद की सहायता तथा उसके परामर्श से ही कार्य करता है। भारत के लोगों को 1919 और 1935 के भारतीय शासन अधिनियमों के अंतर्गत संसदीय शासन का अनुभव था और फिर अध्यक्षीय शासन प्रणाली में इस बात का भी डर था कि कहीं कार्यपालिका अपनी निश्चित पदावधि के कारण निरंकुश न हो जाए। अतः संविधान सभा ने विचार-विमर्श करके यह निर्णय लिया कि भारत के लिए अमरीका के समान अध्यक्षीय शासन प्रणाली के स्थान पर ब्रिटिश मॉडल की संसदीय शासन प्रणाली अपनाना उपयुक्त रहेगा। संसदीय प्रणाली में कार्यपालिका, विधायिका के प्रति उत्तरदायी रहती है तथा उसका विश्वास खो देने पर कायम नहीं रह सकती।

किंतु यह कहना समीचीन नहीं होगा कि भारत में ब्रिटिश संसदीय प्रणाली को पूर्णरूपेण अपना लिया गया है। दोनों में अनेक मूलभूत भिन्नताएं हैं। उदाहरण के लिए–ब्रिटेन का संविधान एकात्मक है, जबकि भारतीय संविधान अधिकांशतः संघीय है। वहां वंशानुगत राजा वाला राजतंत्र है, जबकि भारत निर्वाचित राष्ट्रपति वाला गणराज्य है। ब्रिटेन के विपरीत, भारतीय संविधान एक लिखित संविधान है। इसलिए भारत की संसद प्रभुत्व संपन्न नहीं है तथा इसके द्वारा पारित विधान का न्यायिक पुनरीक्षण हो सकता है।

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 74(1) यह निर्दिष्ट करता है कि कार्य संचालन में राष्ट्रपति की सहायता करने तथा उसे परामर्श देने के लिए प्रधानमंत्री के नेतृत्व में एक मंत्रिपरिषद होगी तथा राष्ट्रपति प्रधानमंत्री के परामर्श से ही कार्य करेगा।

ता एवं अनम्यता का समन्वय

न की कठिन या सरल प्रक्रिया के आधार पर संविधानों को नम्य अथवा कहा जा सकता है। संघीय संविधानों की संशोधन प्रक्रिया कठिन होती है उन्हें सामान्यतया अनम्य श्रेणी में रखा जाता है। अनुच्छेद 368 के कुछ विषयों में संशोधन के लिए संसद के समस्त सदस्यों के बहुमत और सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत के अतिरिक्त कम से कम आधे राज्यों विधानमंडलों का अनुसमर्थन भी आवश्यक है, जैसे–राष्ट्रपति के निर्वाचन की विधि, संघ और इकाइयों के बीच शक्ति विभाजन, राज्यों के संसद में प्रतिनिधित्व, आदि। संशोधन की उपर्युक्त प्रणाली निश्चित रूप से कठोर है, लेकिन कुछ विषयों में संसद के साधारण बहुमत से ही संशोधन हो जाता है। उदाहरणस्वरूप–नवीन राज्यों के निर्माण, वर्तमान राज्यों के पुनर्गठन और भारतीय नागरिकता संबंधी प्रावधानों में परिवर्तन आदि कार्य संसद साधारण बहुमत से कर सकती है।

इस प्रकार भारतीय संविधान नम्यता एवं अनम्यता का अद्भुत सम्मिश्रण है। भारतीय संविधान न तो ब्रिटिश संविधान की भांति नम्य है और न ही अमेरिकी संविधान की भांति अत्यधिक अनम्य। पिछले 50 वर्षों के दौरान संविधान में 83 संशोधन किये जा चुके हैं जो कि संविधान की पर्याप्त लोचशीलता को स्पष्ट करते हैं।

विश्व के प्रमुख संविधानों का प्रभाव

संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण से पूर्व विश्व के प्रमुख संविधानों का विश्लेषण किया और उनकी अच्छाइयों को संविधान में समाविष्ट किया। भारतीय संविधान अधिकांशतः ब्रिटिश संविधान से प्रभावित है। प्रभावित होना स्वाभाविक भी है क्योंकि भारतीय जनता को लगभग दो सौ-वर्षों तक ब्रिटिश प्रणाली के अनुभवों से गुजरना पड़ा। ब्रिटिश संविधान से संसदीय शासन प्रणाली, संसदीय प्रक्रिया, संसदीय विशेषाधिकार, विधि निर्माण प्रणाली और एकल नागरिकता को संविधान में समाविष्ट किया गया है। भारतीय संविधान अमेरिकी संविधान से भी कम प्रभावित नहीं है क्योंकि अमेरिकी संविधान के कई मुख्य तत्वों को भारतीय संविधान में स्थान दिया गया है, जैसे–न्यायिक पुनर्विलोकन, मौलिक अधिकार, राष्ट्राध्यक्ष का निर्वाचन, संघात्मक शासन-व्यवस्था, सर्वोच्च एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को हटाने की प्रक्रिया। संविधान में नीति-निदेशक तत्वों का विचार आयरलैंड के संविधान से लिया गया है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति द्वारा राज्यसभा सदस्यों का मनोनयन और राष्ट्रपति की निर्वाचन प्रणाली भी आयरिश संविधान से प्रेरित है। संघीय शासन प्रणाली कनाडा के संविधान से ली गयी है। गणतांत्रिक व्यवस्था की आधारशिला फ्रांसीसी संविधान के आधार स्तंभ पर रखी गयी है, जबकि आपातकालीन उपबंध जर्मन संविधान से उद्धृत हैं। मूल संविधान में तो केवल मौलिक अधिकारों की ही व्यवस्था की गई थी, लेकिन 42वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम, 1976 के द्वारा मूल संविधान में एक नया भाग 'चार क' जोड़ दिया गया है और उसमें नागरिकों के मूल कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है। रूसी संविधान मूल कर्तव्यों का प्रेरणा स्रोत है। संविधान में संशोधन की प्रक्रिया को दक्षिण अफ्रीका के संविधान से समाविष्ट किया गया है।

ऐकिकता की ओर उन्मुख परिसंघ प्रणाली

भारत के संविधान की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि उसने परिसंघ प्रणाली को ऐकिक सरकार का बल प्रदान किया। सामान्यतः सरकार परिसंघ प्रणाली की है किन्तु संविधान परिसंघ को ऐकिक राज्य में परिवर्तित होने के लिए समर्थ बनाता है। एक ही संविधान में परिसंघ और ऐकिक प्रणालियों का यह संयोजन विश्व में अनूठा है।

देशी रियासतों का विलय

नए संविधान का एक विशेष लक्षण यह है कि 552 देशी रियासतें संविधान के अधीन शेष भारत में विलीन हो गईं। वह समस्या जो भारत शासन अधिनियम, 1935 के रचयिताओं से हल नहीं हो रही थी और जिसके कारण परिसंघ योजना सफल नहीं हो सकी, उसे संविधान के निर्माताओं ने सफलतापूर्वक हल कर दिया।

ब्रिटिश सम्राट के अधीन देशी रियासतों की परिस्थितिः भारत शासन अधिनियम, 1935 में समाप्त होने वाले सांविधानिक सुधारों के समय भारत के नाम से ज्ञात भौगोलिक इकाई दो भागों में विभाजित हो गई, ब्रिटिश भारत और देशी रियासतें। ब्रिटिश भारत में 9 गवर्नरों के प्रांत थे और भारत सरकार द्वारा शासित कुछ क्षेत्र थे। देशी रियासतों में लगभग 600 रियासतें थीं जो अधिकतर शासकों या स्वामियों के व्यक्तिगत शासन के अधीन थीं। सभी देशी रियासतें एक समान नहीं थीं। उनमें से कुछ रियासतें आनुवंशिक प्रमुखों के शासन

के अधीन थीं जिनकी राजनैतिक चली आई थी। कुछ दूसरी रियासतें द्वारा दी गई संपदा या जागीर पारितोषिक के रूप में विशेष व से ये रियासतें जिस एक बात ब्रिटिश सम्राट द्वारा अपने अ सम्राट के प्रत्यक्ष शासन के और संसद के कानूनों और चलाया जाता था। देशी रिय अधीन चल रही थीं। सम्रा इंडिया कंपनी से प्राधिकार अधिराजत्व ग्रहण किया।

परमोच्च शक्ति के

पश्चात् उनके और देशी "परमोच्चता" पद का प्र बीच अनेक प्रकार के व था कि देशी रियासतें अ उनके विदेशी संबंधों कोई अंतरराष्ट्रीय जीव स्थिति थी जो ब्रिटिश नीति सामान्यतः शास या कुप्रशासन के मा

इन सबके होत

भारतीय संवि
1. विधि का शास विधि-निर्माण
2. संघ तथा रा राष्ट्रपति की वर्गों के हितें स्तर के न्य राज्य के स सदन।
3. संविधान निदेशक
4. प्रस्तावना न्यायिक की पदम उप-प्रध
5. मौलिक
6. राज्य उच्च
7. गणतं सिद्ध
8. सश वित हस
9. स
10. अ
11.
12.

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

के अधीन थीं जिनकी राजनैतिक प्रास्थिति मुसलमानों के आक्रमण के पहले से चली आई थी। कुछ दूसरी रियासतें (जिनकी संख्या लगभग 300 थी) शासकों द्वारा दी गई संपदा या जागीर के रूप में थी जो सेवा के लिए था अन्यथा पारितोषिक के रूप में विशेष व्यक्तियों या कुटुम्बों को दी गई थीं। ब्रिटिश भारत से ये रियासतें जिस एक बात में भिन्न थीं वह यह थी कि देशी रियासतों को ब्रिटिश सम्राट द्वारा अपने अधीन नहीं किया गया था। अतएव ब्रिटिश भारत सम्राट के प्रत्यक्ष शासन के अधीन था। यह शासन सम्राट के प्रतिनिधि द्वारा और संसद के कानूनों और ब्रिटेन के विधान मंडल के अधिनियमों के अनुसार चलाया जाता था। देशी रियासतें प्रमुखों और राजाओं के व्यक्तिगत शासन के अधीन चल रही थीं। सम्राट का इन पर "अधिराजत्व" था। 1858 में ईस्ट इंडिया कंपनी से प्राधिकार लेने पर सम्राट ने भारत के समस्त राज्यक्षेत्र पर अधिराजत्व ग्रहण किया था।

परमोच्च शक्ति के अनुषंग: सम्राट द्वारा अधिराजत्व ग्रहण करने के पश्चात् उनके और देशी रियासतों के बीच संबंधों का वर्णन करने के लिए "परमोच्चता" पद का प्रयोग किया जाने लगा। सम्राट और देशी रियासतों के बीच अनेक प्रकार के वचनबंध थे। इन वचनबंधों का एक सामान्य लक्षण यह था कि देशी रियासतें अपने आंतरिक प्रशासन के लिए उत्तरदायी थीं और सम्राट उनके विदेशी संबंधों और प्रतिरक्षा के लिए जिम्मेदार थे। देशी रियासतों का कोई अंतरराष्ट्रीय जीवन नहीं था और विदेशी प्रयोजनों के लिए उनकी वही स्थिति थी जो ब्रिटिश भारत की थी। आंतरिक मामलों में ब्रिटिश सम्राट की नीति सामान्यतः शासकों के शासन में हस्तक्षेप न करने की थी, लेकिन कुशासन या कुप्रशासन के मामले में सम्राट हस्तक्षेप करता था।

इन सबके होते हुए भी देशी रियासतों के शासकों के कुछ व्यक्तिगत अधिकार और विशेषाधिकार थे और वे सामान्यतः अपना व्यक्तिगत प्रशासन चलाते थे जिस पर पड़ोसी ब्रिटिश भारत के राज्यक्षेत्रों की राजनीतिक और सांविधानिक हलचलों का प्रभाव नहीं होता था।

भारत शासन अधिनियम, 1935 द्वारा प्रस्तावित परिसंघ योजना में देशी रियासतों का स्थान: भारत शासन अधिनियम, 1935 में सम्पूर्ण भारत के लिए परिसंघ संरचना की कल्पना की गई थी जिसमें देशी रियासतें गवर्नरी के प्रांतों के साथ इकाई के रूप में सम्मिलित होतीं। किन्तु, अधिनियम के निर्माताओं ने देशी रियासतों का प्रांतों से दो तात्त्विक बातों में भिन्न रखा और अंततोगत्वा इसी विभेद के कारण योजना विफल हो गई। विभिन्नता दो बातों में थी—(क) प्रांतों का परिसंघ में अनिवार्य सम्मिलन अनिवार्य स्वयमेव होना था किन्तु देशी रियासतों की दशा में यह स्वैच्छिक और राज्यों के शासन के विकल्प पर आधारित था। (ख) प्रांतों की दशाओं में प्रांतों पर परिसंघ का प्राधिकार (कार्यपालक और विधायी) अधिनियम द्वारा बनाए गए सम्पूर्ण परिसंघ क्षेत्र पर था।

देशी रियासतों का प्रस्तावित परिसंघ में विलय नहीं हुआ और 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध आरम्भ होने पर अधिनियम के इस भाग को अंतिम रूप से छोड़ दिया गया।

मंत्रिमंडलीय मिशन के प्रस्ताव: मंत्रिमंडलीय मिशन ने यह अवधारणा की कि देशी रियासतें भारत के नए विकास में सहयोग देने के लिए तत्पर होंगी। अतएव उन्होंने यह सिफारिश की कि भारत का एक संघ होना चाहिए, जिसमें ब्रिटिश भारत और देशी रियासतें दोनों हों और जो केवल विदेश कार्य, प्रतिरक्षा और संचार का कार्य करेगा।

भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के अधीन परमोच्चता की समाप्ति: जब भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 पारित किया गया तो उस अधिनियम की धारा 7(1)ख में यह घोषित किया गया कि सम्राट का अधिराजत्व समाप्त हो गया है। यद्यपि ब्रिटिश शासन समाप्त हो गया और देशी रियासतों ने अपनी वही स्थिति पुनः प्राप्त कर ली जो सम्राट द्वारा अधिराजत्व ग्रहण करने के पहले थी किन्तु अधिकतर राज्यों ने यह अनुभव किया कि उनके लिए शेष भारत से पृथक् या स्वाधीन रहकर अपना अस्तित्व बनाए रखना संभव नहीं है और यह उनके अपने हित में है कि वे भारत और पाकिस्तान नामक दो डोमिनियनों में से किसी एक में अपने आपको विलीन कर लें।

भारत डोमिनियन की भौगोलिक सीमाओं के भीतर स्थित राज्यों में से हैदराबाद, कश्मीर, बहावलपुर, जूनागढ़ और पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत की रियासतों को छोड़कर (चित्राल, कुलरा दीर, स्वात और अरब) सभी रियासतें (जिनकी संख्या 552 थी) 15 अगस्त, 1947 से पहले भारत डोमिनियन में अधिमिलन क चुकी थीं अर्थात् "नियत दिन" के पहले। अधिमिलन के पश्चात् राज्यों के में भारत सरकार की समस्या दो प्रकार की थी—(1) देशी रियासतों को समु आकार की प्रशासनिक इकाई का रूप देना, और; (2) उन्हें भारत सांविधानिक संरचना में यथोचित स्थान देना।

पहले उद्देश्य की पूर्ति के लिए समेकन की एक तीन चरण वाली अपनाई गई:

एकीकरण और विलय: 216 रियासतें उन प्रांतों में सम्मिलित क जिनके वे भौगोलिक रूप से निकट थीं। इन विलीन रियासतों को सं पहली अनुसूची के भाग 'ख' के राज्यों के सन्दर्भ में सम्मिलित कि विलय की यह प्रक्रिया ओडीशा और छत्तीसगढ़ के तत्कालीन ओड़ 1 जनवरी, 1948 को विलय से प्रारंभ हुई और जनवरी 1950 में प राज्य में कूच विहार के विलय से समाप्त हुई।

61 रियासतों को केंद्र शासित प्रदेश में परिवर्तित किया संविधान की पहली अनुसूची के भाग 'ग' में सम्मिलित किया का यह तरीका उन मामलों में अपनाया गया, जिनमें प्रशासनि अन्य विशेष कारणों से केंद्र का नियंत्रण आवश्यक समझा

एकीकरण का तीसरा तरीका था, देशी रियासतों के समू इकाइयों में समेकित करना। इन्हें राज्य-संघ नाम दिया गया।

भारतीय संविधान पर विश्व के संविधानों का प्रभाव

लक्षण	देश
1. विधि का शासन, संसदीय शासन, एकल नागरिकता, विधि-निर्माण प्रक्रिया	ब्रिटेन
2. संघ तथा राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन, राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियां, अल्पसंख्यक वर्गों के हितों की रक्षा, उच्चतम न्यायालय के निचले स्तर के न्यायालयों पर नियंत्रण, केंद्रीय शासन का राज्य के शासन में हस्तक्षेप, व्यवस्थापिका के दो सदन।	1935 का भारत सरकार अधिनियम
3. संविधान की सभी सामाजिक नीतियों के संदर्भ में निदेशक तत्वों का उपबंध।	स्विट्जरलैण्ड
4. प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, स्वतंत्र न्यायपालिका, न्यायिक पुनरीक्षण, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की पदमुक्ति, राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रमुख और उप-प्रधानमंत्री उच्च सदन का पदेन अधिकारी	संयुक्त राज्य अमेरिका
5. मौलिक कर्तव्य, प्रस्तावना में न्यायिक आदर्श	भूतपूर्व सोवियत संघ
6. राज्य नीति के निदेशक तत्व, राष्ट्रपति का निर्वाचन, उच्च सदन में सदस्यों का नामांकन	आयरलैण्ड
7. गणतंत्र व्यवस्था, स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व का सिद्धांत	फ्रांस
8. सशक्त केंद्र के साथ संघीय व्यवस्था, शक्तियों का वितरण तथा अवशिष्ट शक्तियों का केंद्र को हस्तांतरण, राज्यों में राज्यपाल की केंद्र द्वारा नियुक्ति	कनाडा
9. समवर्ती सूची, व्यापार एवं वाणिज्य संबंधी प्रावधान	ऑस्ट्रेलिया
10. आपातकालीन उपबंध	जर्मनी (वाइमर संविधान) और 1935 का भारत सरकार अधिनियम
11. संविधान संशोधन प्रावधान, उच्च सदन के सदस्यों का निर्वाचन	दक्षिण अफ्रीका
12. विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया	जापान

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

पहला संघ सौराष्ट्र संघ था, जिसमें काठियावाड़ और कुछ अन्य रियासतें मिल गई थीं। अंतिम संघ था—त्रावणकोर-कोचीन संघ, जो 1 जुलाई, 1949 को बना। इस प्रकार 275 रियासतें सम्मिलित करके 5 संघ बनाए गए—मध्य भारत, पटियाला और पूर्वी पंजाब संघ, राजस्थान, सौराष्ट्र तथा त्रावणकोर-कोचीन, जिन्हें पहली अनुसूची के भाग 'ख' के राज्यों में सम्मिलित किया गया। भाग 'ख' में सम्मिलित अन्य तीन राज्य थे—हैदराबाद, जम्मू-कश्मीर और मैसूर। हैदराबाद और जम्मू-कश्मीर की स्थिति इन सबसे विशेष थी।

1947 में भारत डोमिनियन में अधिमिलन के समय राज्यों ने केवल तीन विषयों के लिए अधिमिलन किया था अर्थात् प्रतिरक्षा, विदेश कार्य व संचार। संघ की रचना के बाद और राजनीतिक घटनाओं के परिणामस्वरूप शासकों को यह लगा कि भारत संघ से और घनिष्ठ संबंध होने चाहिए। सभी संघों के राजप्रमुखों ने और मैसूर के महाराजा ने पुनरीक्षित विलय-विलेखों पर हस्ताक्षर किए, जिनके द्वारा सभी रियासतें संघ सूची और समवर्ती विधायी सूची में सम्मिलित सभी विषयों की बाबत भारत डोमिनियन में विलीन हो गईं।

उल्लेखनीय है कि पूर्वी संघों के राजप्रमुखों ने तथा हैदराबाद, मैसूर और जम्मू-कश्मीर के शासकों ने उद्घोषणा द्वारा भारत के संविधान को अंगीकार किया।

साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के बिना सार्वजनिक मताधिकार

लिंग, सम्पत्ति, कराधान आदि की किसी अर्हता के बिना सार्वजनिक मताधिकार को स्वीकार करना (अनुच्छेद 326) भारत के लिए एक साहसिक प्रयोग है। भारत में मताधिकार इंग्लैंड या अमरीका की अपेक्षा अधिक व्यापक है। संविधान की उद्देशिका में हमने यह घोषणा की है कि भारत के लोग इस संविधान को अंगीकृत और आत्मार्पित करते हैं। इसके पीछे यह संकल्पना है कि जनता प्रभुत्वसम्पन्न है। यह संकल्पना खोखली हो जायेगी यदि उन समस्त लोगों को जो अधिकार का प्रयोग करने में समर्थ हैं, मताधिकार न दिया जाए। मताधिकार के प्रयोग को सुनिश्चित करने के लिए स्वतंत्र निर्वाचन तंत्र की स्थापना की गई है।

संविधान के निर्माताओं की इस बात के लिए भी प्रशंसा की जानी चाहिए कि उन्होंने साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का समाप्त कर दिया। इसी कारण भारत का दुःखद रक्तस्नात विभाजन हुआ। नए संविधान में अनुसूचित जातियों और जनजातियों एवं आंग्ल-भारतीय समुदाय के लिए आरक्षण का प्रावधान किया गया था। यह आरक्षण भी अस्थायी अवधि के लिए था।

वयस्कता की आयु पहले 21 वर्ष थी, परंतु 1989 में 61वें संविधान संशोधन द्वारा यह आयु सीमा घटाकर 18 वर्ष कर दी गई है।

अनेक संशोधनों द्वारा अनुपूरित और 42वें, 43वें और 44वें संशोधन द्वारा 1976-78 में पुनः निर्मित

1949 के संविधान के कुछ मूल लक्षण 1996 तक किए गए 78 संशोधनों द्वारा पर्याप्त रूप से उपांतरित कर दिए गए हैं। इसमें 42वें संशोधन अधिनियम, 1976 ने (1977-78 में 43वें और 44वें संशोधन अधिनियम द्वारा उपांतरित) संविधान को महत्वपूर्ण बातों में व्यवहारतः पुनः निर्मित किया है। संविधान का 73वां संशोधन अप्रैल 1993 में लागू हुआ। इसके द्वारा पंचायतों की स्थापना और उनके लिए निर्वाचन से संबंधित 16 अनुच्छेद जोड़े गए। ये सब एक नए भाग (भाग 9) में हैं।

धर्मनिरपेक्ष राज्य

संविधान में धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा यह है कि पंथ, जाति या सम्प्रदाय के आधार पर किसी भी पंथानुयायी से कोई भेदभाव नहीं किया जाएगा। किसी धर्म को राजधर्म नहीं माना जाएगा, न ही उसे कोई संरक्षण अथवा प्रमिकता दी जाएगी। 1976 में 42वें संविधान संशोधन द्वारा संविधान की प्रस्तावना में धर्मनिरपेक्ष शब्द जोड़कर इस परिप्रेक्ष्य में स्थिति स्पष्ट कर दी है।

धर्मनिरपेक्ष राज्य का तात्पर्य यह है कि राज्य की दृष्टि में सभी धर्म समान तथा राज्य के द्वारा विभिन्न धर्मावलम्बियों में भेदभाव नहीं किया जाएगा। धर्मनिरपेक्ष राज्य किसी भी धर्म का विरोधी नहीं होता और न ही धर्म के प्रति उदासीन ही रहता है, बल्कि उसके द्वारा धार्मिक मामलों में तटस्थता की नीति का अपनाया जाता है।

समाजवादी राज्य

भारतीय संविधान में प्रशासन के सामाजिक सिद्धांत को अप्रत्यक्ष रूप से महत्व दिया गया है। राज्य के नीति-निदेशक सिद्धांत पूर्ण रूप से प्रमाणित समाजवादी व्यवस्था का संस्थापन तो नहीं करते मगर संविधान में समाजवादी उद्देश्य निश्चित रूप से अंकित है। हालांकि 1976 में पारित 42वें संविधान संशोधन के द्वारा संविधान की प्रस्तावना में 'समाजवादी' शब्द जोड़ दिया गया है, जो संविधान के मूल स्वरूप में नहीं था।

जिस राजनीतिक-प्रशासनिक व्यवस्था के अंतर्गत व्यक्ति की अपेक्षा संपूर्ण समाज का विकास का समान अवसर प्रदान किया जाता है, उसे समाजवाद कहा जाता है। इसका उद्देश्य संपूर्ण समाज में आर्थिक, राजनीतिक और आधिकारिक दृष्टि से समानता स्थापित करना होता है। हालांकि भारतीय संविधान पूर्ण रूप से न समाजवादी व्यवस्था पर जोर देता है और न ही पूंजीवादी प्रवृत्तियों को प्रश्रय देता है। यह दोनों के स्वरूपों के मध्य का मार्ग अपनाता है।

स्वतंत्र न्यायपालिका

भारत के संविधान में एक स्वतंत्र न्यायपालिका की व्यवस्था की गई है। उसे न्यायिक पुनरीक्षण की शक्तियां प्रदान की गई हैं। उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय एक ही एकीकृत न्यायिक संरचना के अंग हैं और उनका अधिकार क्षेत्र सभी विधियों अर्थात् संघ, राज्य, सिविल, दांडिक या संवैधानिक विधियों पर होता है। अमेरिका की तरह, हमारे देश में पृथक् संघीय तथा राज्य न्यायालय प्रणालियां नहीं हैं। संपूर्ण न्यायपालिका न्यायालयों का श्रेणीबद्ध संगठन है। उच्चतम न्यायालय का निर्णय देश की सर्वोपरि विधि होती है। इसके अतिरिक्त, संविधान द्वारा नागरिकों को प्रदान किए गए मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए भी न्यायपालिका की स्वतंत्रता नितांत आवश्यक हो जाती है। न्यायपालिका की स्वतंत्रता हेतु संविधान में अनेक विशेष व्यवस्थाएं की गई हैं, यथा—सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा होना, न्यायाधीशों को पद की सुरक्षा प्राप्त होना, न्यायाधीशों के कार्यकाल में उनके वेतन में कमी न हो सकना और न्यायाधीशों के आचरण पर व्यवस्थापिका द्वारा विचार न करना आदि।

इस प्रकार न्यायपालिका स्वतंत्र है और स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् से वर्तमान समय तक भारतीय न्यायपालिका अपनी स्वतंत्रता एवं निष्पक्षता का अनेक बार परिचय दे चुकी है।

नागरिकता

भारतीय संविधान द्वैध शासन प्रणाली को स्वीकार करता है, पर वह द्वैध नागरिकता प्रदान नहीं करता। संविधान में समस्त देश के लिए समान रूप से एक ही नागरिकता की व्यवस्था की गई है। संयुक्त राज्य अमेरिका और अन्य संघ राज्यों में दोहरी नागरिकता की व्यवस्था है, लेकिन भारतीय संविधान के निर्माताओं का विचार था कि दोहरी नागरिकता भारत की एकता को बनाए रखने में बाधक सिद्ध हो सकती है।

अतः संविधान-निर्माताओं द्वारा संघ-राज्य की स्थापना करते हुए भी दोहरी नागरिकता को नहीं वरन् एकल नागरिकता के आदर्श को ही अपनाया गया। इस व्यवस्था से स्वतंत्र संचरण ही नहीं, बल्कि समस्त क्षेत्र में सम्पत्ति अर्जित करने तथा इच्छानुसार किसी भी स्थान पर निवास करने का अधिकार भी भारत के प्रत्येक नागरिक को मिल गया है। इस एकल नागरिकता का यह भी तात्पर्य है कि कोई भी भारतवासी किसी भी निर्वाचन क्षेत्र से संसद के लिए चुनाव लड़ सकता है।

राज्य के नीति-निदेशक तत्व

आयरलैंड के संविधान से प्रेरित होकर तैयार किए गए राज्य नीति के निदेशक तत्व हमारे संविधान की एक अनोखी विशेषता हैं। भारतीय संविधान के चौथे

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

संविधान की प्रस्तावना में वे उद्देश्य लेखबद्ध किए जाते हैं जिनकी ...ए संशोधन के लिए संविधान की रचना होती है। केशवानंद के मामले ...न्यायालय ने इस बात से सहमति प्रकट की थी कि प्रस्तावना संविधान ...न की कुंजी है। जहां शब्द अस्पष्ट पाए जाएं या उनका अर्थ ...वर्ग संविधान निर्माताओं के आशय को समझने के लिए प्रस्तावना ...का की सहायता ली जा सकती है और पता लगाया जा सकता ...द विशेष का प्रयोग व्यापक संदर्भ में किया गया है या संकीर्ण ...संबंध में उल्लेखनीय है कि, इस बाद में सर्वोच्च न्यायालय ने ...विधान का अंग नहीं माना था, क्योंकि बाद में केशवानंद भारती ...धान का अंग घोषित कर दिया गया।

...वनाम राजनारायण राज्य के मामले में न्यायमूर्ति मधोकर ने ...वना पर "गहन विचार-विमर्श" की छाप है, उस पर सुस्पष्टता ...उसे संविधान निर्माताओं ने विशेष महत्व दिया है।

...तावना के आदर्श एवं लक्ष्य

...जन सिद्ध होते हैं–(क) उद्देशिका यह बताती है कि संविधान ...त क्या है; (ख) वह घर भी बताती है कि संविधान किन ...या प्राप्त करना चाहता है।

...विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है:

...मुता संपन्न

...देश संसद की देन नहीं है। इसे भारत के लोगों ने एक ...सभा में समवेत अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से ...र्पित करते हैं" ये शब्द भारत के लोगों की सर्वोच्च ...ओर इस बात की ओर संकेत करते हैं कि संविधान ...प्राधिकार है। 26 जनवरी, 1950 को जब संविधान ...का भारत में कोई विधिक या सांविधानिक प्राधिकार ...न्न या सार्वभौम शब्द का प्रयोग किया जाना इस ...के आंतरिक तथा वैदेशिक मामलों में भारत सरकार

...घोषणा

...यों (कार्यपालिका, व्यवस्थापिका एवं न्यायपालिका) ...णा की गई है। प्रस्तावना के अनुसार भारतीय ...न्याय, स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व। भारतीय

...न की प्रस्तावना

...र को एक संपूर्ण प्रभुत्वसंपन्न, समाजवादी, ...ष बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों

...तिक न्याय,

...र्म

...ता

...ी एकता

...वाली बंधुता बढ़ाने के लिए

...न सभा में आज तारीख 26-11-1949

...अधिनियमित और आत्मार्पित करते

...द 42वें संशोधन के माध्यम से जोड़े

संविधान निर्माता इस तथ्य से पूर्णतः सिद्ध थे कि सामाजिक एवं आर्थिक स्वतंत्रता के अभाव में राजनीतिक स्वतंत्रता निरर्थक है। अतः उन्होंने स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व के आदर्श सिद्धांतों पर भारत के संविधान को आधार प्रदान किया।

लोकतांत्रिक गणराज्य

संविधान की प्रस्तावना में भारत को एक लोकतांत्रिक राज्य घोषित किया गया है। प्रस्तावना में 'लोकतंत्रात्मक गणराज्य' का जो चित्र है वह लोकतंत्र, राजनैतिक और सामाजिक दोनों ही दृष्टिकोण से है अर्थात् न केवल शासन में लोकतंत्र होगा यल्कि समाज भी लोकतंत्रात्मक होगा, जिसमें न्याय, स्वतंत्रता, समता और बंधुता' की भावना होगी। राजशक्ति पर किसी एक वर्ग विशेष का एकाधिकार नहीं होगा और शासन का संचालन बहुमत के सिद्धांत के आधार पर होगा। उन्हीं कानूनों को लागू किया जाएगा जिन्हें जनता का समर्थन प्राप्त होगा। प्रस्तावना में 'गणराज्य' शब्द का उपयोग इस विषय पर प्रकाश डालता है कि दो प्रकार की लोकतंत्रीय व्यवस्थाओं 'वंशानुगत लोकतंत्र' तथा 'लोकतंत्रीय गणतंत्र' में से भारतीय संविधान के अंतर्गत लोकतंत्रीय गणतंत्र को अपनाया गया है।

न्याय

न्याय की स्वतंत्रता और रक्षा के लिए भारतीय संविधान निर्माताओं ने न्यायपालिका की स्वतंत्रता पर विशेष बल दिया है। उद्देशिका में सभी नागरिकों को न्याय का आश्वासन दिया गया है। न्याय का अर्थ है–व्यक्तियों के परस्पर हितों, समूहों के परस्पर हितों के बीच और एक ओर व्यक्तियों तथा समूहों के हितों तथा दूसरी ओर समुदाय के हितों के बीच सामंजस्य स्थापित हो। न्याय की संकल्पना वस्तुतः अति व्यापक है। यह केवल संकीर्ण कानूनी न्याय तक सीमित नहीं, जो न्यायालयों द्वारा दिया जाता है। इसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सभी तरह के न्याय की महत्व दिया गया है।

सामाजिक न्याय से अभिप्राय है कि मानव-मानव के बीच में जाति, वर्ण के आधार पर भेद न माना जाए और प्रत्येक नागरिक को उन्नति के समुचित अवसर सुलभ हों। आर्थिक न्याय से अभिप्राय है कि उत्पादन एवं वितरण के साधनों का न्यायोचित वितरण हो और धन सम्पदा का केवल कुछ ही हाथों में केंद्रीकरण न हो जाए। राजनीतिक न्याय का अभिप्राय है कि राज्य के अंतर्गत समस्त नागरिकों को समान रूप से नागरिक और राजनीतिक अधिकार प्राप्त हों। इस प्रकार प्रस्तावना में उपवर्णित न्याय के विचार से लोक कल्याणकारी राज्य का विचार दृष्टिगोचर होता है और नागरिकों को अन्य क्षेत्रों में न्याय का आश्वासन भी दिया गया है।

स्वतंत्रता

संविधान की उद्देशिका में स्वतंत्रता का तात्पर्य केवल नियंत्रण या आधिपत्य का अभाव ही नहीं है। इसमें "विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता" के अधिकार की सकारात्मक संकल्पना है। इस सकारात्मक अर्थ बोध में स्वतंत्रता का अर्थ है–किसी व्यक्ति की अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने की स्वतंत्रता।

मतदान में भाग लेना, प्रतिनिधियों को चुनना, निर्वाचन में खड़ा होना, सार्वजनिक पद पर नियुक्ति का अधिकार, सरकारी नीतियों की आलोचना करना आदि राजनीतिक स्वतंत्रताएं हैं।

समानता

राजनीति विज्ञान के संदर्भ में 'समानता' का अर्थ यह नहीं है कि सभी पुरुष तथा स्त्रियां सभी परिस्थितियों में समान हैं। उनके बीच शारीरिक, मानसिक और आर्थिक अंतर तो होंगे ही। समानता से अभिप्राय है कि अपने व्यक्तित्व के समुचित विकास के लिए प्रत्येक मनुष्य को समान अवसर उपलब्ध होने चाहिए। सभी नागरिकों को देश के शासन विधान में समान भाग मिलना चाहिए। समान योग्यता और समान श्रम के लिए वेतन भी समान होना चाहिए। इसके अतिरिक्त किसी एक व्यक्ति या एक वर्ग को अन्य व्यक्तियों या वर्गों के शोषण करने का अधिकार नहीं होना चाहिए। भारतीय संविधान की नजर में सभी नागरिक समान होंगे और उन्हें देश की विधियों का समान रूप से संरक्षण प्राप्त होगा।

संविधान की प्रस्तावना में सभी नागरिकों को स्थान और अवसर की समता भी प्रदान की गई है। सार्वजनिक स्थानों में प्रवेश तथा लोक नियोजन के विषय में धर्म, मूलवंश, जाति, स्त्री-पुरुष या जन्म स्थान के आधार पर एक व्यक्ति और दूसरे व्यक्ति के बीच कोई विभेद नहीं होगा।

बंधुत्व

सर्वसामान्य नागरिकता से संबंधित उपबंधों का उद्देश्य भारतीय बंधुत्व की भावना को मजबूत करना तथा एक सुदृढ़ लोकतंत्र का निर्माण करना है। यदि सभी लोगों के बीच बंधुता की भावना उत्पन्न नहीं होगी तो भारतीय लोकतंत्र कमजोर हो सकता है। यह भावना होनी चाहिए कि हम सभी एक ही भूमि के एक ही मातृभूमि के पुत्र हैं। यह भारत जैसे देश के लिए और भी आवश्यक है क्योंकि यहां के लोग विभिन्न मूलवंश, धर्म, भाषा और संस्कृति वाले हैं।

बंधुता का एक अंतरराष्ट्रीय पक्ष भी है जो विश्व-बंधुत्व की संकल्पना 'वसुधैव कुटुंबकम' अर्थात् संपूर्ण विश्व एक परिवार है–के प्राचीन भारतीय आदर्श की ओर ले जाता है। इसे संविधान के अनुच्छेद 51 में नीति-निदेशक सिद्धांतों के अंतर्गत स्पष्ट किया गया है।

समाजवाद

समाजवादी शब्द मूलतः उद्देशिका में समाविष्ट नहीं था बल्कि इसे 42वें संशोधन अधिनियम, 1976 के द्वारा संविधान की उद्देशिका में अंतर्निहित गया है।

समाजवादी शब्द का आशय यह है कि, "ऐसी संरचना जिस के मुख्य साधनों, पूंजी, जमीन, सम्पत्ति आदि पर सार्वजनिक स्वामित्व के साथ वितरण में समतुल्य सामंजस्य हो।" इसका अर्थ यह नहीं है संविधान निजी सम्पत्ति के उन्मूलन में विश्वास रखता है बल्कि यह निर्बंधन लगाता है, जिससे उसका उपयोग राष्ट्रीय हित में किया

आर्थिक क्षेत्र में राज्य का बढ़ता हुआ हस्तक्षेप और भागीदारी का एक विशिष्ट उप-लक्षण है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में दुनिया का नहीं जहां विभिन्न आर्थिक, औद्योगिक और व्यावसायिक क्षेत्र की सरकार सक्रिय रूप से भाग न लेती हो। आमतौर से इसको पर समाजवाद का प्रभाव माना जाता है।

भारतीय संविधान में किए गए अनेक संशोधनों से यह इसकी प्रगति की दिशा लोकतांत्रिक नहीं, सामाजिक आदर्श है और इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ये संशोधन किए

पंथनिरपेक्ष राज्य

अनेक मतों के मानने वाले भारत के लोगों की एकता और करने के लिए संविधान में 'पंथनिरपेक्ष राज्य' का आदर्श अर्थ है कि राज्य सभी मतों की समान रूप से रक्षा भी मत को राज्य के धर्म के रूप में नहीं मानेगा।

राज्य के इस 'पंथनिरपेक्ष' उद्देश्य को 42वें संवि द्वारा उद्देशिका में अंतःस्थापित करके सुनिश्चित किय 25-29 में धर्म की स्वतंत्रता से संबंधित सभी नागरिक में समाविष्ट करके क्रियान्वित किया गया है। ये उ अपने धर्म का पालन करने, आचरण करने और प्र हैं तथा राज्य की ओर से और इसके साथ ही रा ओर से सभी धर्मों के प्रति पूर्ण निष्पक्षता सुनिश्चि में डोनाल्ड यूजीन स्मिथ की पंथनिरपेक्षता

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 1 के अनुसार स्वतः यह स्पष्ट हो जाता है कि संविधान में हैं, वे सभी राज्यों में एक समान रूप से लाग जम्मू-कश्मीर राज्य को छोड़कर)। संविधान

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

संविधान की प्रस्तावना में सभी नागरिकों को स्थान और अवसर की समता भी प्रदान की गई है। सार्वजनिक स्थानों में प्रवेश तथा लोक नियोजन के विषय में धर्म, मूलवंश, जाति, स्त्री-पुरुष या जन्म स्थान के आधार पर एक व्यक्ति और दूसरे व्यक्ति के बीच कोई विभेद नहीं होगा।

बंधुत्व

सर्वसामान्य नागरिकता से संबंधित उपबंधों का उद्देश्य भारतीय बंधुत्व की भावना को मजबूत करना तथा एक सुदृढ़ लोकतंत्र का निर्माण करना है। यदि सभी लोगों के बीच बंधुता की भावना उत्पन्न नहीं होगी तो भारतीय लोकतंत्र कमजोर हो सकता है। यह भावना होनी चाहिए कि हम सभी एक ही भूमि के, एक ही मातृभूमि के पुत्र हैं। यह भारत जैसे देश के लिए और भी आवश्यक है क्योंकि यहां के लोग विभिन्न मूलवंश, धर्म, भाषा और संस्कृति वाले हैं।

बंधुता का एक अंतरराष्ट्रीय पक्ष भी है जो विश्व-बंधुत्व की संकल्पना 'वसुधैव कुटुंबकम्' अर्थात् संपूर्ण विश्व एक परिवार है—के प्राचीन भारतीय आदर्श की ओर ले जाता है। इसे संविधान के अनुच्छेद 51 में नीति-निदेशक सिद्धांतों के अंतर्गत स्पष्ट किया गया है।

समाजवाद

समाजवादी शब्द मूलतः उद्देशिका में समाविष्ट नहीं था बल्कि इसे 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 के द्वारा संविधान की उद्देशिका में अंतर्निहित किया गया है।

समाजवादी शब्द का आशय यह है कि, "ऐसी संरचना जिसमें उत्पादन के मुख्य साधनों, पूंजी, जमीन, सम्पत्ति आदि पर सार्वजनिक स्वामित्व या नियंत्रण के साथ वितरण में समतुल्य सामंजस्य हो।" इसका अर्थ यह नहीं है कि भारतीय संविधान निजी सम्पत्ति के उन्मूलन में विश्वास रखता है बल्कि यह उस पर कुछ निर्बंधन लगाता है, जिससे उसका उपयोग राष्ट्रीय हित में किया जा सके।

आर्थिक क्षेत्र में राज्य का बढ़ता हुआ हस्तक्षेप और भागीदारी वर्तमान सदी का एक विशिष्ट उप-लक्षण है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में दुनिया का कोई ऐसा देश नहीं जहां विभिन्न आर्थिक, औद्योगिक और व्यावसायिक क्षेत्र के प्रबंध में वहां की सरकार सक्रिय रूप से भाग न लेती हो। आमतौर से इसको राज्य की प्रक्रिया पर समाजवाद का प्रभाव माना जाता है।

भारतीय संविधान में किए गए अनेक संशोधनों से यह स्पष्ट होता है कि इसकी प्रगति की दिशा लोकतांत्रिक नहीं, सामाजिक आदर्शों की ओर उन्मुख है और इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ये संशोधन किए जाते रहे हैं।

पंथनिरपेक्ष राज्य

अनेक मतों के मानने वाले भारत के लोगों की एकता और उनमें बंधुता स्थापित करने के लिए संविधान में 'पंथनिरपेक्ष राज्य' का आदर्श रखा गया है। इसका अर्थ है कि राज्य सभी मतों की समान रूप से रक्षा करेगा और स्वयं किसी भी मत को राज्य के धर्म के रूप में नहीं मानेगा।

राज्य के इस 'पंथनिरपेक्ष' उद्देश्य को 42वें संविधान संशोधन, 1976 के द्वारा उद्देशिका में अंतःस्थापित करके सुनिश्चित किया गया है। इसे अनुच्छेद 25-29 में धर्म की स्वतंत्रता से संबंधित सभी नागरिकों के मूल अधिकार के रूप में समाविष्ट करके क्रियान्वित किया गया है। ये अधिकार, प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म का पालन करने, आचरण करने और प्रचार करने का अधिकार देते तथा राज्य की ओर से और इसके साथ ही राज्य की विभिन्न संस्थाओं की ओर से सभी धर्मों के प्रति पूर्ण निष्पक्षता सुनिश्चित करते हैं। भारतीय संदर्भ में डोनाल्ड यूजीन स्मिथ की पंथनिरपेक्षता की संकल्पना इस प्रकार है—"पंथनिरपेक्ष राज्य वह राज्य है जो धर्म की व्यक्तिगत तथा समवेत स्वतंत्रता प्रदान करता है, जो संवैधानिक रूप से किसी धर्म विशेष से जुड़ा हुआ नहीं है और जो धर्म का न तो प्रचार करता है तथा न ही उसमें हस्तक्षेप करता है।" भारत एक धर्म प्रधान देश रहा है, फिर भी यहां धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत को अपनाया गया। पश्चिम के कतिपय प्रगतिशील देशों ने अपने यहां के प्रचलित प्रधान धर्म को राज्य धर्म के रूप में ग्रहण कर रखा है। फिर भी भारत में नए संविधान और लोकतंत्र की स्थापना करते समय धर्मनिरपेक्षता का सिद्धांत अपनाया गया जबकि भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र ही धर्म रहा है, धर्म ही भारतीयों का प्राण रहा है, उनका सम्पूर्ण जीवन धर्म से ओत-प्रोत रहा है। पुरुषार्थ, धर्म, अर्थ और काम के अंतर्गत धर्म को अत्यधिक महत्व दिया गया है, लेकिन धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत को अपनाये जाने के कारणों के पक्ष में प्रसिद्ध विधिवेत्ता डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी के अनुसार, "यह राष्ट्रीय एकीकरण का एक साकार विचार है जिसमें राष्ट्रीय जीवन की बिखरी हुई सम्पन्नता को पल्लवित करने की क्षमता है।"

धर्मनिरपेक्षता ही भारत की राष्ट्रीयता का आधार है। धर्मनिरपेक्षता विविधता में एकता और हमारे देश की गौरवमयी विभिन्नताओं के प्रति हमारे आदर का प्रतीक है। धर्मनिरपेक्षता अन्य सभ्यताओं और संस्कृतियों के सर्वोत्तम तत्वों के साथ हमारे आत्मविश्वास भरे सम्पर्क की दीर्घ परम्परा का परिणाम है।

भारत में धर्मनिरपेक्षता का अर्थ धर्म का विरोध या अधार्मिकता नहीं है; अपितु, इसका अर्थ है—सर्वधर्म समभाव अर्थात् सभी धर्मों को समान आदर देना, चाहे वह बहुसंख्यकों का धर्म हो या अल्पसंख्यकों का। धर्मनिरपेक्षता में प्रत्येक व्यक्ति को पूजा और प्रचार की पूरी स्वतंत्रता प्राप्त है, लेकिन राज्य का अपना कोई धर्म नहीं है और वह किसी धर्म विशेष के आधार पर अपने किसी भी नागरिक के साथ किसी भी प्रकार के भेदभाव और पक्षपात् का निषेध करता है।

राष्ट्रीय एकता

भौगोलिक, भाषाई, सांस्कृतिक इत्यादि की पर्याप्त विविधता होते हुए भी सम्पूर्ण भारत एक है। अतः भारतीय संविधान की प्रस्तावना में राष्ट्रीय एकता पर पर्याप्त बल प्रदान किया गया है। प्रस्तावना में उन दो विशेष आधारों पर बल प्रदान किया गया है, जिनके माध्यम से राष्ट्रीय एकता दृढ़ होती है—(i) प्रस्तावना में व्यक्ति की प्रतिष्ठा एवं महत्व पर बल दिया गया है। व्यक्ति को लोकतंत्र की एक महत्वपूर्ण इकाई मानते हुए राष्ट्रीय एकता को एक महत्वपूर्ण आधार माना गया है। राष्ट्रीय स्वाभिमान की भावना की जागृति, व्यक्ति के स्वाभिमान की भावना से सम्बन्धित है, परंतु व्यक्ति के स्वाभिमान की भावना राज्य एवं समाज में, उसके महत्व को स्वीकार करने पर निर्भर है। यदि राज्य तथा समाज में व्यक्ति को उसकी उचित प्रतिष्ठा तथा अधिकार प्राप्त हैं। यह स्वाभाविक है कि नागरिक के रूप में देश के प्रति उसकी आस्था बनी रहेगी तथा इसके फलस्वरूप राष्ट्रीय भावना तथा एकता दृढ़ होगी। (ii) माना जाता है कि, समाज एवं राज्य द्वारा व्यक्ति की प्रतिष्ठा एवं अधिकारों की स्वीकृति, राज्य तथा समाज में नागरिकों के मध्य बन्धुत्व अथवा स्नेह की भावना प्रज्ज्वलित करेगी, जिससे राष्ट्रीय एकत दृढ़ होगी।

इस प्रकार, प्रस्तावना में निहित इन दो आधारों पर संविधान निर्मात द्वारा राष्ट्रीय एकता को दृढ़ बनाने का आश्वासन दिया गया है।

5. संघ एवं राज्यों का पुनर्गठन

य संविधान के अनुच्छेद 1 के अनुसार भारत राज्यों का संघ है—इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि संविधान में राज्यों से संबंधित जितने भी उपबंध भी राज्यों में एक समान रूप से लागू होतें हैं (अनुच्छेद 370 के अंतर्गत श्मीर राज्य को छोड़कर)। संविधान निर्माताओं ने 'राज्यों के संघ' की व्याख्या कर इसके स्वरूप को स्पष्ट किया है। उनके अनुसार भारतीय इकाइयों के मध्य हुए किसी समझौते का परिणाम नहीं है और इकाइ से अलग होने की स्वतंत्रता भी प्राप्त नहीं है। इसके पश्चात् अ भारतीय संसद को उपयुक्त शर्तों के आधार पर किसी भी नए र

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

में सम्मिलित करने का या नये राज्यों की स्थापना करने का अधिकार है। परंतु इससे संबंधित विधेयक संसद में प्रस्तुत करने के लिए सर्वप्रथम राष्ट्रपति को संबद्ध राज्य के विधानमण्डल की सहमति प्राप्त करनी पड़ती है ताकि संसद उस राज्य की जनता की प्रतिक्रियाओं को जान सके।

भारत में देशी राज्यों का विलय

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व भारतीय राज्य क्षेत्र दो वर्गों में विभक्त था—ब्रिटिश भारत और देशी रियासतें।

ब्रिटिश भारत में 9 प्रांत थे, जबकि देशी रियासतों की संख्या 600 थी, जिनमें 542 रियासतों को छोड़कर शेष पाकिस्तान राज्य में शामिल हो गई। 542 रियासतों में से तीन रियासतों—जूनागढ़, हैदराबाद तथा जम्मू-कश्मीर को भारत में विलय कराने में काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। जूनागढ़ रियासत को जनमत संग्रह के आधार पर तब भारत में मिलाया गया, जब उसका शासक पाकिस्तान चला गया। हैदराबाद की रियासत को सैन्य कार्यवाही करके भारत में सम्मिलित किया गया और जम्मू-कश्मीर रियासत के शासक ने पाकिस्तानी कबायलियों के आक्रमण के कारण विलय-पत्र पर हस्ताक्षर करके अपनी रियासत को भारत में मिलाया। देशी रियासतों का भारत में विलय तत्कालीन गृह मंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल की दूरदर्शिता और साहसपूर्ण कूटनीतिक प्रयासों के कारण संभव हो पाया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत ब्रिटिश प्रांतों एवं देशी रियासतों को एकीकृत करके भारत में राज्यों को चार श्रेणियों में विभाजित किया गया, जो निम्नलिखित हैं:

'ए' श्रेणी के राज्य: ब्रिटिश भारत के प्रांतों के साथ 216 देशी रियासतों को सम्मिलित करके 'ए' श्रेणी के राज्यों का गठन किया गया। ये राज्य थे—असम, बिहार, बंबई, मध्य प्रदेश, मद्रास, ओडीशा, पंजाब, संयुक्त प्रांत, पश्चिमी बंगाल, आंध्र प्रदेश। इनकी संख्या 10 थी।

'बी' श्रेणी के राज्य: 275 देशी रियासतों को नयी प्रशासनिक इकाई में गठित करके 'बी' राज्य की श्रेणी प्रदान की गयी। ये राज्य थे—हैदराबाद, जम्मू-कश्मीर, मध्य भारत, मैसूर, पेप्सू (पटियाला और पूर्वी पंजाब के राज्यों का संघ), राजस्थान, सौराष्ट्र तथा त्रावणकोर-कोचीन। इनकी संख्या 8 थी।

'सी' श्रेणी के राज्य: 61 देशी रियासतों को एकीकृत करके 'सी' राज्य की श्रेणी में रखा गया। ये राज्य थे—अजमेर, बिलासपुर, भोपाल, दुर्ग, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, कच्छ, मणिपुर, त्रिपुरा और विंध्य प्रदेश के राज्य। इनकी संख्या 10 थी।

'डी' श्रेणी के राज्य: अंडमान तथा निकोबार द्वीप समूह को 'डी' राज्य की श्रेणी में रखा गया था।

राज्य पुनर्गठन आयोग

संविधान के द्वारा राज्यों का श्रेणियों में विभाजन तात्कालिक उपयोगिता के आधार पर किया गया था। प्रायः सभी इस व्यवस्था से संतुष्ट नहीं थे। जब केंद्रीय सरकार ने मद्रास राज्य की तेलुगू भाषी जनता के अनुरोध पर 1952 में आंध्र को अलग राज्य बना देने का निर्णय किया तो स्थिति में आकस्मिक परिवर्तन आ गया। 1 अक्टूबर, 1953 में आंध्र प्रदेश राज्य की स्थापना के पश्चात्, भाषा के आधार पर नए राज्यों के पुनर्गठन की मांग भड़क उठी। जब इस समस्या को सुलझाना असंभव हो गया तो इस समस्या के शांतिपूर्ण निदान के लिए 1953 में 'राज्य पुनर्गठन आयोग' की नियुक्ति की गई।

भारत के सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश फजल अली इस आयोग के अध्यक्ष और पंडित एच.एन. कुंजरू और सरदार के.एम. पाणिक्कर इसके सदस्य थे।

हालांकि संविधान निर्माण के पश्चात् ही 27 नवंबर, 1947 को संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश एस.के. धर की अध्यक्षता में एक चार सदस्यीय आयोग का गठन किया और उसे इस बात की जांच-पड़ताल करने के लिए कहा कि भाषायी आधार पर राज्यों का पुनर्गठन उचित है अथवा नहीं। इस आयोग ने दिसंबर, 1948 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी। इस रिपोर्ट में आयोग ने प्रशासनिक आधार पर राज्यों के पुनर्गठन का समर्थन किया।

22 दिसंबर, 1953 को फजल अली की अध्यक्षता में गठित आयोग ने 30 सितंबर, 1955 में केंद्र सरकार को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी और राज्यों के पुनर्गठन के संबंध में निम्न सिफारिशें कीं:

(1) राज्यों का पुनर्गठन भाषा और संस्कृति के आधार पर अनुचित है।

(2) राज्यों का पुनर्गठन राष्ट्रीय सुरक्षा, वित्तीय एवं प्रशासनिक आवश्यकता तथा पंचवर्षीय योजनाओं की सफलता को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए।

(3) ए, बी, सी और डी वर्गों में विभाजित राज्यों को समाप्त कर दिया जाये तथा इनकी जगह पर सोलह राज्यों तथा तीन केंद्रशासित प्रदेशों का निर्माण किया जाए। संसद ने इस आयोग की सिफारिशों को कुछ परिवर्तनों के साथ स्वीकार कर 1956 में राज्य पुनर्गठन अधिनियम पारित किया। इस अधिनियम के अंतर्गत भारत में चौदह राज्य और पांच केंद्रशासित प्रदेश थे। जिन चौदह राज्यों का उल्लेख था, वे हैं—आंध्र प्रदेश, असम, बिहार, बंबई (वर्तमान में मुंबई), जम्मू-कश्मीर, केरल, मध्य प्रदेश, मद्रास (वर्तमान में चेन्नई), मैसूर, उड़ीसा (वर्तमान में ओडिशा), पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल। जिन पांच केंद्रशासित प्रदेशों का नाम था, वे हैं—दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, त्रिपुरा एवं अंडमान-निकोबार द्वीप समूह।

विभिन्न राज्य पुनर्गठन आयोग

वर्ष	आयोग का नाम	अनुशंसा
03	सर हर्बर्ट रिजले आयोग	बंगाल सरकार को भाषायी आधार पर बंगाल विभाजन का सुझाव दिया।
11	लॉर्ड हार्डिंग आयोग	बंगाल विभाजन को निरस्त करने की मांग की गई थी।
8	मांटेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट	राज्यों के गठन के भाषायी एवं जातीय आधार को अस्वीकार किया परंतु छोटी इकाइयों पर बल दिया।
	मोतीलाल नेहरू रिपोर्ट	इस आयोग ने जनसंख्या, भौगोलिक, आर्थिक एवं वित्तीय स्थिति, भाषा एवं जनता की इच्छा को आधार माना।
	भारतीय संविधिक आयोग	इसने जाति, धर्म, आर्थिक हित, भौगोलिक एकरूपता, गांव-शहर में संतुलन इत्यादि में किसी भी एक मुद्दे को नहीं अपितु अन्य अनेक मामलों को गठन का आधार स्वीकार किया।
	सवैधानिक सुधार समिति	इसकी अनुशंसा पर सांप्रदायिक आधार पर सिंध प्रांत का गठन किया गया।
	धर आयोग	इस आयोग ने भाषायी आधार के बजाय ऐतिहासिक, भौगोलिक, प्रशासनिक, सांस्कृतिक और आर्थिक आधार को पुनर्गठन का आधार माना।
	जे.वी.पी. आयोग	हालांकि इस आयोग ने आर्थिक, वित्तीय, प्रशासनिक एवं जनेच्छा के आधार को अस्वीकार नहीं किया लेकिन भाषा को भी एक आधारिक तथ्य के रूप में स्वीकार किया जिसके परिणामस्वरूप 1956 में आंध्र प्रदेश का गठन हुआ।
	फजल अली आयोग	इस आयोग ने राष्ट्रीय एकता, प्रशासनिक, आर्थिक, वित्तीय व्यवहार्यता एवं आर्थिक विकास एवं अल्पसंख्यक हितों की रक्षा को पुनर्गठन के आधार रूप में स्वीकार किया। इस आयोग की अनुशंसा को परिवर्तनों के साथ स्वीकार कर राज्य पुनर्गठन अधिनियम पारित किया गया।

- असम सीमा परिवर्तन अधिनियम, 19
- भूटान को सौंप कर असम की सीमा
- आंध्र राज्य अधिनियम 1953 के द्वारा
- राज्य से कुछ राज्यक्षेत्र निकालकर,
- हिमाचल प्रदेश और बिलासपुर (नए
- और बिलासपुर, इन दो भागों का
- बनाया गया।
- बिहार और पश्चिमी बंगाल अधिनि
- बंगाल को अंतरित किए गए।
- राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956
- और भाषाई मांगों को पूरा करने
- कुछ राज्यक्षेत्रों को अंतरित किए
- गया और मध्य भारत, पेप्सू, सौर
- और विंध्य प्रदेश की रियासतें
- राजस्थान और मध्य प्रदेश अ
- मध्य प्रदेश को अंतरित कि
- आंध्र प्रदेश और मद्रास (स
- मद्रास राज्यों की सीमाओं
- बंबई पुनर्गठन अधिनियम
- नामक एक नया राज्य ब
- दिया गया।
- अर्जित राज्यक्षेत्र अधि
- में किए गए समझौते
- बंगाल राज्यों में विल

भारत में मौजूदा
छत्तीसगढ़, गोवा, गुज
कर्नाटक, केरल, मध्य
ओडिशा, पंजाब, राज
पश्चिम बंगाल तथा
2014 के अंतर्गत

भारत में नए रा
प्रदान की गई
केन्द्रीय व्यवस्थ
राज्यक्षेत्र अल
को मिलाकर
अथवा अनु
अधिकृत है
संवि
घटाने की
करने की
किया ज
के अनु

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

विभिन्न राज्य पुनर्गठन अधिनियम

- असम सीमा परिवर्तन अधिनियम, 1951 के द्वारा भारत के राज्य क्षेत्र से एक भाग भूटान को सौंप कर असम की सीमा में परिवर्तन किया गया
- आंध्र राज्य अधिनियम 1953 के द्वारा, संविधान के प्रारम्भ के समय विद्यमान मद्रास राज्य से कुछ राज्यक्षेत्र निकालकर, आंध्र प्रदेश नामक नया राज्य बनाया गया।
- हिमाचल प्रदेश और बिलासपुर (नया राज्य) अधिनियम, 1954 से हिमाचल प्रदेश और बिलासपुर, इन दो भागों का विलय कर एक राज्य अर्थात् हिमाचल प्रदेश बनाया गया।
- बिहार और पश्चिमी बंगाल अधिनियम, 1956 द्वारा कुछ राज्य क्षेत्र बिहार से पश्चिमी बंगाल को अंतरित किए गए।
- राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 से भारत के विभिन्न राज्यों की सीमाओं में स्थानीय और भाषाई मांगों को पूरा करने के लिए परिवर्तन किया गया। विद्यमान राज्यों के बीच कुछ राज्यक्षेत्रों को अंतरित किया गया। इसके अतिरिक्त एक नया केरल राज्य बनाया गया और मध्य भारत, पेप्सू, सौराष्ट्र, त्रावणकोर, कोचीन, अजमेर, भोपाल, कोड़गू, कच्छ और विंध्य प्रदेश की रियासतों का उनसे लगे हुए राज्यों में विलय कर दिया गया।
- राजस्थान और मध्य प्रदेश अधिनियम, 1959 द्वारा राजस्थान राज्य से कुछ राज्यक्षेत्र मध्य प्रदेश को अंतरित किए गए।
- आंध्र प्रदेश और मद्रास (सीमा परिवर्तन) अधिनियम, 1959 द्वारा आंध्र प्रदेश और मद्रास राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन किए गए।
- बंबई पुनर्गठन अधिनियम, 1960 द्वारा बंबई राज्य को विभाजित करके गुजरात नामक एक नया राज्य बनाया गया और बंबई के बचे हुए राज्य को महाराष्ट्र नाम दिया गया।
- अर्जित राज्यक्षेत्र अधिनियम, 1960 से भारत और पाकिस्तान के बीच 1958-1959 में किए गए समझौते द्वारा अर्जित कुछ राज्यक्षेत्रों का असम, पंजाब और पश्चिमी बंगाल राज्यों में विलय के लिए उपबंध किया गया।
- नागालैंड राज्य अधिनियम, 1962 के द्वारा नागालैंड राज्य की रचना की गई जिसमें "नागा पहाड़ी और त्वेनसांग क्षेत्र" का राज्यक्षेत्र समाविष्ट किया गया।
- पंजाब पुनर्गठन अधिनियम, 1966 जिसके द्वारा पंजाब राज्य को पंजाब और हरियाणा राज्यों में और चंडीगढ़ के संघ राज्यक्षेत्रों में बांटा गया।
- आंध्र प्रदेश और मैसूर अधिनियम, 1968 (राज्य क्षेत्र अंतरण)।
- बिहार और उत्तर प्रदेश (सीमा परिवर्तन) अधिनियम, 1968।
- असम पुनर्गठन अधिनियम, 1969 द्वारा असम राज्य के भीतर मेघालय नाम का स्वशासी उपराज्य बनाया गया।
- हिमाचल प्रदेश राज्य अधिनियम, 1970 (1970 का 53) की धारा 4 द्वारा (25-1-1971 से) राज्य का दर्जा दिया गया।
- पूर्वोत्तर क्षेत्र (पुनर्गठन) अधिनियम, 1971 द्वारा मणिपुर, त्रिपुरा और मेघालय को राज्यों के प्रवर्ग में सम्मिलित किया गया और मिजोरम तथा अरुणाचल प्रदेश को संघ राज्यक्षेत्र में सम्मिलित किया गया।
- हरियाणा और उत्तर प्रदेश (सीमा परिवर्तन) अधिनियम, 1979।
- मिजोरम राज्य अधिनियम, 1986 द्वारा मिजोरम को राज्य का दर्जा दिया गया।
- अरुणाचल प्रदेश राज्य अधिनियम, 1986।
- गोवा, दमन और दीव पुनर्गठन अधिनियम, 1987।
- मध्य प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2000 द्वारा नया छत्तीसगढ़ राज्य बना।
- उत्तर प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2000 द्वारा नया उत्तरांचल (वर्तमान उत्तराखण्ड) राज्य बना।
- बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000 द्वारा झारखंड राज्य बना।
- आंध्र प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2014 द्वारा तेलंगाना राज्य बना।

भारत में मौजूदा 29 राज्य हैं: आंध्र प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश, असम, बिहार, छत्तीसगढ़, गोवा, गुजरात, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, झारखंड, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैण्ड, ओडिशा, पंजाब, राजस्थान, सिक्किम, तमिलनाडु, त्रिपुरा, उत्तराखण्ड, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल तथा तेलंगाना (तेलंगाना राज्य, आंध्र प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2014 के अंतर्गत 2 जून, 2014 को अस्तित्व में आया)।

नए राज्यों का निर्माण

भारत में नए राज्यों के निर्माण की शक्ति संविधान द्वारा भारतीय संसद को प्रदान की गई है (अनुच्छेद-3)। तत्सम्बन्धी संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार, केन्द्रीय व्यवस्थापिका अर्थात् संसद सामान्य विधान द्वारा किसी राज्य में से उसका राज्यक्षेत्र अलग करके अथवा दो या अधिक राज्यों को अथवा राज्यों के भागों को मिलाकर नए राज्य का निर्माण कर सकती है। संसद राज्यों की सहमति अथवा अनुमति के बिना भी उनके राज्यक्षेत्रों में परिवर्तन हेतु संविधान द्वारा अधिकृत है।

संविधान का अनुच्छेद-3 संसद को किसी भी राज्य के क्षेत्र को बढ़ाने अथवा घटाने की, सीमाओं में परिवर्तन करने की अथवा राज्य के नाम में परिवर्तन करने की शक्ति प्रदान करता है। संसद द्वारा यह कार्य साधारण कानून बनाकर किया जा सकता है। अनुच्छेद-3 में उल्लिखित कानून निर्माण सम्बन्धी प्रावधानों के अनुसार, तत्सम्बन्धी विधेयक राष्ट्रपति की सिफारिश पर ही प्रस्तुत किया जाएगा और राष्ट्रपति द्वारा यह विधेयक प्रभावित होने वाले राज्य के विधानमण्डल को निर्दिष्ट किया जाएगा। विधेयक भेजे जाने के साथ ही राष्ट्रपति द्वारा राज्य को अपना मत प्रस्तुत करने के सम्बन्ध में एक अवधि का निर्धारण किया जा सकता है। राज्य द्वारा अभिव्यक्त किए गए मत को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने के लिए संसद बाध्य नहीं है। साथ ही संविधान द्वारा यह भी स्पष्ट किया गया है कि अनुच्छेद-2 और 3 के अधीन निर्मित कोई भी कानून अथवा विधि अनुच्छेद-368 के प्रयोजनार्थ इस संविधान का संशोधन नहीं समझे जाएंगे।

उल्लेखनीय है कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद-3 के अंतर्गत 100वां संविधान संशोधन, 2015 किया गया है जो 6 जून, 2015 से लागू हो गया है। इसके अंतर्गत भारत और बांग्लादेश के बीच 1974 में हुआ भूमि सीमा समझौता (एलबीए) अमल में आएगा। इसके साथ दोनों देशों की 4,096 कि.मी. लम्बी सीमा में विवादास्पद 6.1 कि.मी. लम्बी सीमा के पुनर्निर्धारण को अमल में लाने का कार्य शुरू होगा। इस समझौते से भारत के चार सीमावर्ती राज्य असम मेघालय, त्रिपुरा और पश्चिम बंगाल प्रभावित हुए हैं। इसके परिणामस्वरूप भार को 2777 एकड़ और बांग्लादेश को 2267 एकड़ जमीन मिलेगी।

उत्तराखंड, झारखंड और छत्तीसगढ़ की तरह तेलंगाना को अलग राज्य ब की मांग के आंदोलन की एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि रही है। छोटे राज्यों अवधारणा के साथ सत्ता का विकेंद्रीकरण जुड़ा हुआ है। जवाहरलाल नेहरू के विकेंद्रीकरण के पक्षधर रहे। इस प्रकार, भारत में मजबूत केंद्र बनाम व प्रदेश और विकेंद्रीकृत सत्ता की दो राजनीतिक धाराएं सक्रिय रही हैं

6. नागरिकता

किसी भी संप्रभु राष्ट्र या देश में राज्य की ओर से नागरिकों को कुछ ऐसे राजनीतिक और सामाजिक अधिकार प्राप्त होते हैं, जो अन्य लोगों को प्रदान नहीं किए जाते। लोकतंत्रात्मक राज्य व्यवस्था के मूल अपरिहार्य सिद्धांत को नागरिकता कानूनी रूप प्रदान करती है। यह इस तथ्य को प्रमाणित करती है कि व्यक्ति को राज्य की पूर्ण राजनीतिक सदस्यता प्राप्त है, राज्य के प्रति उसकी स्थायी निष्ठा है और वह राज्य द्वारा इस बात की अधिकाधिक स्वी उसे राजनीतिक प्रणाली में शामिल कर लिया गया है। नागरिक दायित्व, अधिकार, कर्तव्य और विशेषाधिकार प्रदान करती है। विदेशियों को प्रदान नहीं किये जाते।

भारत के नागरिकों को संविधान के अधीन निम्नलिखित अ

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

(i) मतदान करने का अधिकार तथा कतिपय मूल अधिकार जो केवल भारत के नागरिकों को ही प्रदान किए गए हैं, जैसे—अनुच्छेद-15, 16 और 19 में प्रदत्त अधिकार।

(ii) केवल नागरिक ही कुछ पदों के योग्य होंगे, जैसे—राष्ट्रपति का पद [अनुच्छेद-58(1)(क)], उपराष्ट्रपति का पद [अनुच्छेद-66(3)(क)], उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश [अनुच्छेद-124(3)], उच्च न्यायालय का न्यायाधीश [अनुच्छेद-217(2)], महान्यायवादी [अनुच्छेद-76(2)], राज्यपाल (अनुच्छेद 157), महाधिवक्ता (अनुच्छेद-165)।

(iii) लोकसभा और प्रत्येक राज्य की विधान सभा के निर्वाचन के लिए मत देने का अधिकार (अनुच्छेद-326) और संसद का सदस्य होने का अधिकार (अनुच्छेद-84) तथा राज्य के विधानमंडल का सदस्य होने का अधिकार [अनुच्छेद-19(1)(घ)] केवल भारत के नागरिकों के लिए ही उपलब्ध है।

भारतीय संविधान में नागरिकता के संबंध में संविधान के भाग-2 में अनुच्छेद 5 से लेकर अनुच्छेद 11 तक उल्लेख किया गया है, जो इस प्रकार हैं:

अनुच्छेद-5: इस अनुच्छेद में संविधान लागू होने की तिथि पर नागरिकता की व्याख्या की गई है। इस अनुच्छेद में नागरिकता के किसी स्थायी नियम का निर्धारण नहीं था, क्योंकि स्थायी नियम के निर्धारण का अधिकार संसद को सौंप दिया गया था। संविधान के प्रारंभ होने की तिथि पर वह प्रत्येक व्यक्ति जो भारतीय राज्य क्षेत्र का अधिवासी था, जो भारत में उत्पन्न हुआ हो या माता-पिता दोनों में से कोई एक भारत में उत्पन्न हुआ हो अथवा संविधान के प्रारंभ से पांच वर्ष पूर्व से भारत का निवासी रहा हो, वह भारत का नागरिक माना जाएगा।

इस प्रकार प्रवासियों में दो प्रकार के भेद किए गए है—*प्रथम*, जो व्यक्ति 19 जुलाई, 1948, जब प्रवास के लिए परमिट सिस्टम शुरू किया गया था, से पहले भारत में प्रवास कर गए थे और वे जो उस तारीख के बाद आए थे, तथा; *द्वितीय*, जो व्यक्ति 19 जुलाई, 1948 से पहले पाकिस्तान से प्रवास करके भारत में आ गया था, उसे संविधान के प्रारंभ पर भारत का नागरिक समझा जाएगा बशर्ते कि उसके माता-पिता में से कोई एक अथवा पितामह में से कोई भारत शासन अधिनियम, 1935 में यथा परिभाषित भारत में जन्मा था और जो अपने प्रवास की तारीख से आमतौर पर भारत में रह रहा था।

19 जुलाई, 1948 के बाद प्रवास करने वाले की स्थिति में शर्त यह थी कि उसे भारत सरकार द्वारा इस प्रयोजन के लिए नियुक्त अधिकारी द्वारा भारत के नागरिक के रूप में पंजीकृत कर लिया गया हो। किंतु इस दूसरी स्थिति में, किसी व्यक्ति को तब तक इस रूप में पंजीकृत नहीं किया जाएगा जब तक वह अपने आवेदन की तारीख से ठीक पहले कम-से-कम छह महीनों से भारत में न रह रहा हो।

अनुच्छेद-6: संविधान के इस अनुच्छेद में पाकिस्तान से भारत को प्रव्रजन करने वाले कुछ व्यक्तियों के नागरिकता के अधिकार का उपबंध है।

अनुच्छेद-7: संविधान के इस अनुच्छेद में भारत से पाकिस्तान को प्रव्रजन करने वाले कुछ व्यक्तियों के नागरिकता के अधिकार का उपबंध है।

अनुच्छेद 7 में उन व्यक्तियों की नागरिकता के अधिकारों के संबंध में विशेष-उपबंध किए गए हैं जो 1 मार्च, 1947 के बाद पाकिस्तान में प्रवास कर गए थे किंतु बाद में भारत लौट आए थे। अनुच्छेद-7 के अनुसार, 1 मार्च, 1947 के बाद पाकिस्तान को प्रवास करने वाला व्यक्ति भारत का नागरिक नहीं माना जाएगा, किंतु उन व्यक्तियों की दशा में अपवाद किया गया है जो भारत में पुनर्वास के लिए परमिट के आधार पर भारत लौट आए थे। ऐसे व्यक्ति भारत के नागरिक होने के हकदार बन गये थे यदि वे पाकिस्तान से प्रवास करने वाले व्यक्तियों के लिए अनुच्छेद 6 के अधीन निर्धारित शर्तों को पूरा करते हों।

अनुच्छेद-8: संविधान के इस अनुच्छेद में विदेशों में रहने वाले भारतीय मूल के कुछ व्यक्तियों के लिये नागरिकता के अधिकार का उपबंध है।

इस अनुच्छेद में विदेशों में रहने वाले भारतीयों की नागरिकता संबंधी भावी जरूरतों का ध्यान रखा गया है। भारतीय मूल के अनेक व्यक्ति रोजगार के प्रयोजनों के लिए या अन्यथा विदेशों में रह रहे हैं या वहां प्रवास कर गए हैं। ऐसे व्यक्तियों के लिए अनुच्छेद 8 में प्रावधान किया गया है कि कोई व्यक्ति या उसके माता-पिता अथवा पितामह में से कोई भारत शासन अधिनियम, 1935 के अनुसार भारत में जन्मा था और जो भारत के बाहर किसी देश में सामान्यतया निवास कर रहा है, उसे भारत का नागरिक समझा जाएगा लेकिन शर्त यह है कि उसे नागरिकता की प्राप्ति के लिए, सम्बद्ध देश में भारत के राजनयिक या कांउसिलीय प्रतिनिधि द्वारा भारत के नागरिक के रूप में पंजीकृत कर लिया गया हो।

अनुच्छेद-9: संविधान के इस अनुच्छेद में यह उपबंध है कि यदि कोई व्यक्ति स्वेच्छा से विदेशी नागरिकता स्वीकार कर ले तो वह किसी उपबंध के अनुसार नागरिकता का अधिकार होते हुए भी भारत का नागरिक नहीं माना जाएगा।

अनुच्छेद-10: इस अनुच्छेद में नागरिकता के अधिकारों के बने रहने का प्रावधान है। इस अनुच्छेद के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति जो अनुच्छेद 5 से 10 में किए गए उपबंधों में से किसी के अधीन भारत का नागरिक है या समझा जाता है, ऐसी विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए, जो संसद द्वारा बनाई जाए, भारत का नागरिक बना रहेगा। अभिप्राय यह है कि किसी नागरिक की नागरिकता का अधिकार, संसदीय विधान के अतिरिक्त किसी अन्य रीति से, छीना नहीं जा सकता (इब्राहिम बजीर बनाम बंबई राज्य 1954)। कुछ समय तक इस विषय में काफी मतभेद बना रहा कि क्या निगम भी कानूनी व्यक्तियों के दायरे में आ सकते हैं? किंतु नागरिकता अधिनियम ने यह स्पष्ट कर दिया कि निगम नागरिक नहीं हैं। उच्चतम न्यायालय ने भी कहा है कि निगम अनुच्छेद 19 के अधीन अधिकारों का दावा नहीं कर सकते। वे तो केवल नागरिकों के लिए हैं।

अनुच्छेद-11: इस अनुच्छेद के उपबंध के तहत् देश की राष्ट्रीयता के संबंध में संसद को परिस्थिति के अनुकूल कानून बनाने का पूर्णाधिकार दिया गया है। संसद का यह अधिकार नागरिकता-प्राप्ति के संबंध में कानून बनाने तक सीमित नहीं है, नागरिकता के अंत तक इससे संबंध रखने वाले अन्य विषयों से भी जुड़ा है।

इस अनुच्छेद में संसद को भारत की नागरिकता के अर्जन तथा निरसन के संबंध में तथा उससे संबंधित सभी विषयों के संबंध में विधान अधिनियमित करने की निर्बाध शक्तियां प्रदान करता है। तदनुसार, संसद ने नागरिकता अधिनियम, 1955 पारित किया जिसमें नागरिकता के अर्जन तथा निरसन की व्यवस्था की गई है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि, संविधान के प्रारंभ के बाद नागरिकता के अधिकारों से संबंधित सभी मामलों का निपटारा इसके उपबंधों के अनुसार किया जाता है।

नागरिकता अधिनियम, 1955

अनुच्छेद 11 में दी गई शक्ति के अनुरूप, संविधान लागू होने के बाद नागरिकता प्राप्ति और समाप्ति हेतु विस्तृत उपबंध प्रदान करने के लिए नागरिकता अधिनियम 1955 लागू किया गया।

अधिनियम को कई बार संशोधित किया गया। 1955 का अधिनियम मौलिक रूप से राष्ट्रमण्डल नागरिकता प्रदान करता है। 26 जनवरी, 1950 को भारतीय संविधान लागू होने पर, ब्रिटिश नागरिकता कानून के अंतर्गत एक व्यक्ति जो भारतीय नागरिक बन गया है, राष्ट्रमण्डल नागरिक का भी दर्जा प्राप्त होगा (इस दर्जे से वह व्यक्ति ब्रिटिश पासपोर्ट का प्रयोग करने का अधिकारी नहीं होगा)। लेकिन 2003 में किए गए संशोधन ने इस प्रावधान को निरस्त कर दिया।

नागरिकता का अर्जन

विभिन्न वर्षों (1986, 1992, 2003, 2005 और 2015 में) के अंतर्गत संशोधित नागरिकता अधिनियम, 1955 द्वारा नागरिकता अर्जन की विभिन्न पद्धतियों एवं तरीकों को निर्धारित किया गया है।

जन्म से नागरिकता: 26 जनवरी, 1950 को या बाद में, लेकिन 1 जुलाई, 1987 से पूर्व भारत में जन्मा व्यक्ति, उसके अभिभावकों की नागरिकता पर विचार किए बिना, भारत का नागरिक है। 1 जुलाई, 1987 को या बाद में भारत में जन्मा व्यक्ति भारत का नागरिक समझा जाएगा यदि उसके जन्म के समय

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

उसके माता-पिता में कोई एक भारत का नागरिक हो। 3 दिसम्बर, 2004 को या उसके बाद भारत में जन्मा व्यक्ति (नागरिकता (संशोधन) अधिनियम, 2003 के अनुसार) भारत का नागरिक समझा जाएगा यदि उसके माता-पिता दोनों ही भारत के नागरिक हों या माता-पिता में से कोई एक भारत का नागरिक है और दूसरा उसके जन्म के समय अवैध प्रवासी नहीं है।

[2003 के संशोधन के अनुसार अवैध प्रवासी वे हैं, जो (i) विधि द्वारा निर्धारित वैध पासपोर्ट या वाजा दस्तावेजों के बिना भारत में प्रवेश कर गया हो या (ii) जिसने वैध दस्तावेजों के साथ भारत में प्रवेश किया हो लेकिन अनुमान्य अवधि से अधिक समय से रहे रहा हो।]

वंशक्रम द्वारा: 26 जनवरी, 1950 को या बाद में, लेकिन 10 दिसंबर, 1992 से पूर्व, भारत में जन्मा व्यक्ति वंशक्रम से भारत का नागरिक है, यदि जन्म के समय उसके पिता भारत के नागरिक थे। 10 दिसंबर, 1992 को या उसके बाद भारत में जन्मा व्यक्ति भारत का नागरिक समझा गया है, यदि उसके माता-पिता में से कोई एक जन्म के समय भारत का नागरिक है। 2003 के संशोधन के अनुसार, 3 दिसंबर, 2004 से, भारत से बाहर जन्मा व्यक्ति इस खण्ड के तहत भारत का नागरिक नहीं होगा, जब तक कि जन्म के एक वर्ष के भीतर या उक्त अवधि समाप्त हो जाने पर केंद्र सरकार की अनुमति के साथ भारतीय कोन्सुलेट में उसका पंजीकरण न हो। अल्पवयस्क बच्चे के जन्म के पंजीकरण हेतु आवेदन धारा 4(1) के तहत् भारतीय कोन्सुलेट में होगा। ऐसे अल्पवयस्क बच्चे के माता-पिता के लिखित में शपथ की आवश्यकता भी होगी कि वे दूसरे देश के पासपोर्टधारक नहीं हैं। (लेकिन एक अल्पव्यस्क, जो इस खण्ड के अंतर्गत भारत का नागरिक है और एक अन्य देश का भी नागरिक है, को भारत की नागरिकता समाप्त की जाएगी यदि वह वयस्क होने के छह माह के भीतर दूसरे देश की नागरिकता या राष्ट्रीयता का त्याग नहीं करता। यह भी कि, कोई पुरुष अविभाजित भारत में जन्मा हो, भारत के संविधान लागू होने पर केवल वंशक्रम द्वारा भारत का नागरिक समझा जाएगा)।

(उपर्युक्त दो श्रेणियां प्राकृतिक नागरिकों की हैं।)

पंजीकरण द्वारा: केंद्र सरकार, आवेदन करने पर, किसी भी व्यक्ति को भारत के नागरिक के तौर पर पंजीकृत कर सकती है, जो अभी तक एक अवैध प्रवासी न हो, यदि वह निम्न में से किसी श्रेणी से संबंध रखता हो, नामतः

(i) पंजीकरण हेतु आवेदन करने से पूर्व भारतीय मूल का व्यक्ति साधारणतया भारत में सात वर्षों से निवासी हो;

(ii) भारतीय मूल का व्यक्ति जो साधारणतया किसी अन्य देश में या अविभाजित भारत के बाहर रहता हो;

(iii) पंजीकरण हेतु आवेदन करने से पूर्व एक व्यक्ति जिसने भारत के नागरिक से विवाह किया हो और साधारणतया सात वर्षों से भारत निवासी हो;

(iv) ऐसे व्यक्तियों के अल्पवयस्क बच्चे जो भारत के नागरिक हों;

(v) वयस्क एवं सक्षम व्यक्ति जिसके माता-पिता भारत के नागरिक के तौर पर पंजीकृत हों;

(vi) पंजीकरण हेतु आवेदन करने से ठीक पहले वयस्क एवं सक्षम व्यक्ति, जो या उसके माता-पिता में से कोई एक, पूर्व में स्वतंत्र भारत का नागरिक था, और भारत में साधारणतया 12 माह से निवासी हो;

(vii) पंजीकरण हेतु आवेदन करने से पहले वयस्क एवं सक्षम व्यक्ति जो पांच वर्षों से ओवरसीज सिटीजन ऑफ इण्डिया कार्डहोल्डर (ओसीआईसी) के तौर पर पंजीकृत हो, और जो साधारणतया भारत में 12 माह से निवासी हो। (एक व्यक्ति भारतीय मूल के व्यक्ति के समकक्ष समझा जाएगा। यदि वह, या उसके माता-पिता में से कोई एक, अविभाजित भारत में या ऐसे अन्य क्षेत्र में जन्मा था जो 15 अगस्त, 1947 के बाद भारत का हिस्सा बन गया।)

नागरिकता (संशोधन) अधिनियम 2015, हालांकि, उपबंध करता है कि यदि केंद्र सरकार आश्वस्त हो जाती है कि विशिष्ट परिस्थितियां मौजूद हैं, यह, लिखित में परिस्थितियों को दर्ज करने के पश्चात् 12 माह की अवधि को अधिकतम 30 दिनों की अवधि में बदल सकती है जो अलग-अलग टुकड़ों में हो सकती है।

देशीकरण द्वारा: देशीकरण द्वारा भारत की नागरिकता का अर्जन एक विदेशी द्वारा किया जा सकता है जो भारत में साधारणतया 14 वर्षों से निवासी है (आवेदन की तिथि से पूर्व निरंतर 12 माह और 12 माह से पूर्व 14 वर्षों में कुल योग 11 वर्षों का हो)। हालांकि, यदि केंद्र सरकार समझती है कि विशिष्ट परिस्थितियां मौजूद हैं, वह साधारण निवास की अवधि को 14 से बढ़ाकर 15 वर्ष कर सकती है।

वयस्क एवं सक्षम व्यक्ति, जो अवैध प्रवासी नहीं है, देशीकरण के प्रमाण-पत्र हेतु आवेदन कर सकता है, और केंद्र सरकार, यदि संतुष्ट हो जाती है कि आवेदक देशीकरण हेतु अर्ह है, उसे देशीकरण का प्रमाण पत्र दे सकती है।

देशीकरण द्वारा नागरिक बनने के लिए,

(i) व्यक्ति ऐसे देश से सम्बद्ध नहीं होना चाहिए जहां भारत के नागरिकों को प्रजा बनने से रोका जाता हो या देशीकरण से नागरिक बनने की मनाही हो;

(ii) यदि वह किसी देश का नागरिक है तो उसे उस नागरिकता को त्यागना होगा, यदि भारतीय नागरिकता के लिए उसका आवेदन स्वीकार कर लिया जाता है;

(iii) आवेदन प्रस्तुत करने से ठीक पहले उसे भारत में निवास या भारत में सरकारी सेवा में या दोनों में अंशतः निरंतर 12 माह तक रहना होगा;

नागरिकता (संशोधन) अधिनियम 2015, हालांकि, प्रावधान करता है कि यदि केंद्र सरकार संतुष्ट हो जाती है कि विशिष्ट परिस्थितियां मौजूद हैं, तो वह, लिखित में परिस्थितियां दर्ज करने के पश्चात्, 12 माह की अवधि में विभिन्न टुकड़ों में अधिकतम 30 दिनों की छूट दे सकती है;

(iv) कथित 12 माह की समयावधि के ठीक पहले 14 वर्षों के दौरान वह या तो भारत में रहता हो, या भारत में सरकारी सेवा में रह रहा हो, या अंशतः दोनों में हो, इस अवधि का कुल योग 11 वर्षों से कम नहीं होना चाहिए;

(v) वह सद्चरित्र का होना चाहिए;

(vi) उसे भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में उल्लिखित किसी एक भाषा का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए।

(vii) नागरिकता देने के समय उसकी भारत में रहने की इच्छा होनी चाहिए, या भारत में प्रवेश या भारत में सरकार के अधीन सेवा जारी करने या अंतरराष्ट्रीय संगठन के अंतर्गत कार्य करने जिसका भारत एक सदस्य हो या भारत में स्थापित समाज, कंपनी या लोगों के निकाय के अधीन हो।

यदि, हालांकि, केंद्र सरकार के विचार से, आवेदक एक ऐसा व्यक्ति है जिसने सामान्य तौर पर विज्ञान, दर्शन, कला, साहित्य, विश्व शांति या मानव प्रगति के लिए विशिष्ट सेवाएं दी हैं, तो वह नागरिकता अधिनियम 1955 की तीसरी अनुसूची में उल्लिखित शर्तों में किसी एक या सभी से उसे छूट दे सकती है। देशीकरण द्वारा नागरिकता अर्जित करने वाले व्यक्ति को भारत के संविधान के प्रति निष्ठा की शपथ लेनी होगी।

राज्यक्षेत्र में मिल जाने से: यदि कोई अन्य राज्यक्षेत्र भारत का भाग बन जाता है तो भारत सरकार यह विनिर्दिष्ट करेगी कि उस राज्यक्षेत्र के व्यक्ति भारत के नागरिक होंगे।

नागरिकता की समाप्ति

संविधान का अनुच्छेद-9 उन नागरिकों पर लागू था जो अनुच्छेद 5, 6 और 8 के तहत् नागरिक हैं; संविधान के लागू होने के पश्चात् उत्पन्न मामलों में नागरिकता अधिनियम 1955 के परिप्रेक्ष्य में देखा जाएगा। भारत सरकार य निर्णय करती है कि क्या किसी की भारत की नागरिकता समाप्त हो गई है नागरिकता अधिनियम 1955 यह भी निर्धारित करता है कि नागरिकता का त किस प्रकार होता है, चाहे यह 1955 के अधिनियम के अंतर्गत अर्जित की या इससे पूर्व। नागरिकता की समाप्ति हो सकती है:

(i) स्वैच्छिक त्यागः एक भारतीय नागरिक जो किसी दूसरे दे नागरिक बनने की इच्छा रखता है, स्वैच्छिक रूप से अपनी भारतीय नाग का त्याग कर सकता है। यदि ऐसी घोषणा ऐसे समय में की जाती है ज युद्ध चल रहा हो और भारत भी उसमें लिप्त हो, तो केंद्र सरकार ऐसी न

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

छोड़ने के पंजीकरण को रोक सकती है। जहां परित्याग द्वारा नागरिकता छोड़ी गई हो, उस व्यक्ति के प्रत्येक अल्पवयस्क बच्चे की भारत की नागरिकता भी समाप्त की जाएगी। हालांकि, ऐसे कोई भी बच्चे, वयस्क होने के एक वर्ष के भीतर, घोषणा कर सकते हैं कि उनकी इच्छा भारतीय नागरिकता प्राप्त करने की है और वे फिर से भारत के नागरिक बन सकते हैं। ऐसी कोई भी महिला जो विवाहित है, वयस्क मानी जाएगी।

(ii) समाप्तिः भारतीय नागरिकता स्वतः समाप्त हो जाती है यदि एक व्यक्ति स्वेच्छिक रूप से किसी अन्य देश की नागरिकता प्राप्त कर लेता है। यह प्रावधान, हालांकि, युद्ध के दौरान लागू नहीं होता, जिसमें भारत संलग्न है, जब तक कि केंद्र सरकार कोई अन्य निर्देश नहीं देती।

(iii) वंचनाः यह भारत सरकार के आदेश द्वारा भारत की नागरिकता की वांछनीय समाप्ति है यदि यह संतुष्ट हो जाए कि नागरिकता की प्राप्ति धोखेबाजी, असत्य प्रत्यावेदन या तथ्यों के छुपाने; या युद्ध के दौरान शत्रु देश के साथ व्यापार में संलिप्त होने; या यदि व्यक्ति को उसके पंजीकरण या देशीकरण के पांच वर्षों के भीतर दो या अधिक वर्षों के कारावास की सजा दी गई हो; या यदि वह निरंतर सात वर्षों तक विदेश में रहा हो, और उस समयावधि में वह भारत से बाहर किसी भी समय किसी शैक्षिक संस्थान का विद्यार्थी नहीं रहा हो और न ही भारत सरकार की सेवा में हो, ना ही किसी अंतरराष्ट्रीय संगठन की सेवा में हो जिसका भारत एक सदस्य हो, ना ही भारत की नागरिकता बनाए रखने की अपनी इच्छा हेतु निर्धारित प्रक्रिया द्वारा वार्षिक रूप से भारतीय कौन्सुलेट में पंजीकृत हुआ हो। वंचना के ये तरीके पंजीकरण या देशीकरण से बने नागरिकों पर स्वाभाविक रूप से लागू होते हैं। भारतीय नागरिक से विवाह के जरिये देशीकरण या पंजीकरण द्वारा बने भारत के नागरिक को विशेष कारणों से गृह मंत्रालय द्वारा नागरिकता से वंचित किया जा सकता है।

ओवरसीज सिटीजन ऑफ इण्डिया कार्डहोल्डर

भारतीय प्रवासी पर उच्च स्तरीय समिति की अनुशंसा के आधार पर, भारत सरकार ने ओवरसीज सिटीजनशिप ऑफ इण्डिया (ओसीआई) प्रदान करने का निर्णय लिया, जिसे आमतौर पर 'दोहरी नागरिकता' के नाम से जाना जाता है, यद्यपि यह वास्तविक अर्थ में 'दोहरी' नहीं है। भारतीय मूल के व्यक्ति (पीआईओ) जो भारत से प्रवास कर गए और विदेशी देश की नागरिकता अर्जित कर ली, जिसमें पाकिस्तान एवं बांग्लादेश शामिल नहीं हैं, ओसीआई हेतु अर्ह हैं।

संसद ने 23 दिसंबर, 2003 को नागरिकता (संशोधन) अधिनियम, 2003 पारित किया। 2003 के अधिनियम के अनुसार, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, फिनलैंड, फ्रांस, ग्रीस, आयरलैंड, इजरायल, इटली, नीदरलैंड, न्यूजीलैंड, पुर्तगाल, साइप्रस, स्वीडन, स्विट्जरलैंड, यूनाइटेड किंगडम और संयुक्त राज्य अमेरिका के भारतीय मूल के नागरिक थे, ओसीआई हेतु आवेदन करने के लिए अर्ह थे।

7 जनवरी, 2005 को प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने उन समस्त भारतीय मूल के व्यक्तियों को दोहरी नागरिकता प्रदान करने की घोषणा की जो 26 जनवरी, 1950 के पश्चात् भारत से प्रवास कर गए थे। उनकी इस घोषणा के परिप्रेक्ष्य में भारतीय संसद ने नागरिकता (संशोधन) अधिनियम, 2005 को पारित किया, क्योंकि पूर्ववर्ती 2003 के अधिनियम में मात्र 16 देशों में निवास करने वाले भारतीय मूल के व्यक्तियों के लिए ही दोहरी नागरिकता की व्यवस्था थी, जबकि 2005 के नए संशोधित अधिनियम में यह व्यवस्था पाकिस्तान एवं बांग्लादेश के नागरिकों को छोड़कर सभी देशों के नागरिकों के लिए है। दोहरी नागरिकता के प्रावधान के अनुसार व्यक्ति भारत में अनिश्चित (Indefinitely) तौर पर रहता हो; न कि भारतीय मूल के व्यक्ति (Person of Indian Origin—PIO) का कार्डधारक, जो कि केवल छह माह की अवधि हेतु ही एकल निवास की अनुमति प्रदान करता है।

नागरिकता (संशोधन) अध्यादेश, 2005, जून 2005 को प्रख्यापित किया गया, और अधिनियम अगस्त 2005 में पारित किया गया। 6 जनवरी, 2015 को फिर से भारत के राष्ट्रपति ने नागरिकता (संशोधन) अध्यादेश, 2015 प्रख्यापित किया जो बाद में नागरिकता (संशोधन) अधिनियम 2015 बना जिसने पीआईओ और ओसीआई के बीच के अंतर को समाप्त कर दिया। इसने 'ओवरसीज सिटीजनशिप ऑफ इण्डिया' की 'ओवरसीज सिटीजन ऑफ इण्डिया कार्डहोल्डर' में तब्दील या प्रतिस्थापित कर दिया।

उपर्युक्त संशोधनों के पश्चात्, नागरिकता अधिनियम, 1955 के अ... को किसी व्यक्ति को ओवरसीज सिटीजन ऑफ इण्डिया कार्ड ... पर पंजीकृत करने की अधिकृत करता है जोः

(i) वे व्यक्ति जो अब किसी भी देश के नागरिक हैं, किंतु जो 26 ... 1950 को भारत का संविधान लागू होने के समय अथवा बाद में किसी ... भारत के नागरिक थे;

(ii) वे व्यक्ति जो किसी अन्य देश के नागरिक हैं, किंतु सक्षम ... होने के समय भारत की नागरिकता प्राप्त करने के पात्र थे;

(iii) वे व्यक्ति जो किसी अन्य देश के नागरिक हैं, किंतु भारत के ... ऐसे क्षेत्र से संबन्ध रखते हों, जो 15 अगस्त, 1947 के पश्चात् भारत का ... बना हो;

(iv) (i) से (iii) में सूचीबद्ध नागरिकों के बच्चे या पौत्र-पौत्रियां ... पड़पौत्र-पड़पौत्रियां;

(v) उपर्युक्त (i) से (iv) में उल्लिखित व्यक्ति के अल्पवयस्क ... का नागरिक है;

(vi) अल्पवयस्क बच्चा, जिसके दोनों अभिभावक या दोनों में से एक ... की विदेशी मूल की पति या पत्नी है या ...

(vii) भारत के नागरिक सिटीजन ऑफ इण्डिया कार्डहोल्डर की ... के तौर पर पंजीकृत ओवरसीज सिटीजन ऑफ इण्डिया कार्डहोल्डर की ... मूल की पति या पत्नी है और जिनका विवाह पंजीकृत है, पंजीकरण हेतु आ... की प्रस्तुति शुरू करने से पूर्व, विवाह की अवधि निरंतर दो वर्ष में ...

होनी चाहिए।

उपबंध है कि ओसीआईसी के तौर पर पंजीकरण के लिए अर्हता ... पति या पत्नी भारत में सक्षम प्राधिकारी द्वारा सुरक्षा निर्वधन के अधीन ...

लेकिन, उपर्युक्त किसी भी उपबंध के अधीन, कोई भी व्यक्ति जो, ... अभिभावक या दादा-दादी या परदादा-परदादी पाकिस्तान, बांग्लादेश या ... किसी देश जिसे केंद्र सरकार कार्यालयी राजपत्र में अधिसूचना देकर समय-... ओसीआईसी के तौर पर पंजीकरण हेतु अर्ह नहीं होगा।

(viii) हालांकि, उपरिलिखित शर्तों की उपेक्षा करते हुए, केंद्र सरकार ... वह संतुष्ट हो जाती है कि विशिष्ट दशाएं मौजूद हैं, लिखित में परिलि... को दर्ज करने के पश्चात्, किसी व्यक्ति को ओसीआईसी के रूप में पंजी... कर सकती है।

अधिकारों का प्रदायनः नागरिकता अधिनियम, 1955 प्रावधान करत... कि ओसीआईसी को ऐसे अधिकार प्रदान किए जाएंगे, जैसाकि केंद्र सर... राजकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा स्पष्ट करे। ओसीआईसी को ... अधिकार नहीं होंगेः

(i) भारतीय संविधान के अनुच्छेद-16 के अंतर्गत लोक नियोजन में अव... की समानता के संबंध में;

(ii) भारत के संविधान के अनुच्छेद-58 के तहत् भारत के राष्ट्रपति ... तौर पर चयनित होने में;

(iii) संविधान के अनुच्छेद-66 के अंतर्गत उपराष्ट्रपति निर्वाचित होने ...

(iv) संविधान के अनुच्छेद-124 के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाध... की नियुक्ति के लिए;

(v) संविधान के अनुच्छेद-217 के तहत् उच्च न्यायालय के न्यायाधी... नियुक्त होने के लिए

(vi) वह जनप्रतिनिधि अधिनियम 1950 की धारा 16 के अंतर्गत मतदा... के तौर पर पंजीकृत होने;

(vii) लोक सभा या राज्य सभा का सदस्य बनने के अर्ह होने के लि...

(viii) विधानसभा या विधान परिषद् का सदस्य बनने हेतु अर्ह ... के लिए;

(ix) केंद्र सरकार द्वारा विशेष आदेश के जरिए सेवाओं एवं पदों ... नियुक्ति के सिवाय, संघ या किसी राज्य से सम्बद्ध लोक सेवाओं एवं पदों ... नियुक्ति के लिए।

कार्ड का परित्यागः यदि कोई ... घोषणा करता है, तो केंद्र सरकार द्वार... और ऐसे पंजीकरण के पश्चात्, उस ... दिया जाएगा। यदि एक व्यक्ति का ... है, तो उस व्यक्ति का विदेशी मू... अल्पवयस्क बच्चे को ओसीआईसी

ओसीआईसी के तौर पर पंज... आधारों पर ओसीआईसी का पंजी...

(i) यदि पंजीकरण धोखेबाज... हासिल किया गया है; या

(ii) यदि ओसीआईसी, विधि... प्रदर्शन करता है; या

(iii) यदि ओसीआईसी, यु... रूप से शत्रु के साथ व्यापार ...

(iv) यदि ओसीआईसी को... वर्ष के लिए कारावास की स...

(v) यदि भारत की संप्र... या देश के साथ भारत के दो... में ऐसा करना आवश्यक हो...

(vi) यदि एक ओसीआ... न्यायालय द्वारा या अन्यथा... हुआ हो।

लेकिन ऐसे विवाह ... केवल अल्पवयस्क को छो... राष्ट्रीयता का निषेध कर... हुई है। ओसीआईसी भार... नागरिकता नहीं है। इसक... नहीं है और इसलिए, भ... होता है जिसमें आजी...

यद्यपि यह संपूर्ण ... वीजा प्रदान करता है... प्रदान करता है। ओ... एनआरआई के समा... संपत्तियां खरीदने ... वे पर्वतारोहण, मिश... का भ्रमण करने के... पर फॉरनर्स रीज... पंजीकरण कराने...

भारत में केवल ... संविधान संघा... की गई है,...

लोकतां... जीवन... हेतु उ... है।...

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

कार्ड का परित्यागः यदि कोई ओसीआईसी कार्ड का परित्याग करने की घोषणा करता है, तो केंद्र सरकार द्वारा इस घोषणा को पंजीकृत किया जाएगा, और ऐसे पंजीकरण के पश्चात्, उस व्यक्ति का ओसीआईसी दर्जा समाप्त कर दिया जाएगा। यदि एक व्यक्ति का ओसीआईसी दर्जा समाप्त कर दिया जाता है, तो उस व्यक्ति का विदेशी मूल का पति या पत्नी और उसके प्रत्येक अल्पवयस्क बच्चे को ओसीआईसी बनने से रोक दिया जाएगा।

ओसीआईसी के तौर पर पंजीकरण का निरस्तीकरणः केंद्र सरकार निम्न आधारों पर ओसीआईसी का पंजीकरण निरस्त कर सकती हैः

(i) यदि पंजीकरण धोखेबाजी, झूठे तथ्यों एवं जानकारी के छिपाव पर हासिल किया गया है; या

(ii) यदि ओसीआईसी, विधि द्वारा स्थापित संविधान के प्रति अभद्रता का प्रदर्शन करता है; या

(iii) यदि ओसीआईसी, युद्ध के दौरान जिसमें भारत भी संलिप्त है, अवैध रूप से शत्रु के साथ व्यापार एवं सम्पर्क करता है; या

(iv) यदि ओसीआईसी को पंजीकरण के पांच वर्षों के भीतर दो या अधिक वर्ष के लिए कारावास की सजा दी गई हो; या

(v) यदि भारत की संप्रभुता एवं अखण्डता, भारत की सुरक्षा, दूसरे देशों या देश के साथ भारत के दोस्ताना संबंधों के हित में, या आम जन के हित में ऐसा करना आवश्यक हो गया हो; या

(vi) यदि एक ओसीआईसी व्यक्ति के विवाह कोः (i) विधि के सक्षम न्यायालय द्वारा या अन्यथा भंग कर दिया गया हो; या (ii) विवाह भंग न हुआ हो।

लेकिन ऐसे विवाह के दौरान, उसने किसी अन्य से विवाह कर लिया हो। केवल अल्पवयस्क को छोड़कर भारत का संविधान दोहरी नागरिकता या दोहरी राष्ट्रीयता का निषेध करता है, जहां दूसरी नागरिकता अनिच्छुक रूप से अर्जित हुई है। ओसीआईसी भारत की संपूर्ण नागरिकता नहीं है और इसलिए, यह दोहरी नागरिकता नहीं है। इसके अतिरिक्त, ओसीआई कार्ड भारतीय वीजा का विकल्प नहीं है और इसलिए, भारत में यात्रा के दौरान ओसीआईसी को पासपोर्ट रखना होता है जिसमें आजीवन वीजा उल्लिखित होता है।

यद्यपि यह संपूर्ण दोहरी नागरिकता नहीं है, यह कार्ड धारक को आजीवन वीजा प्रदान करता है और उन्हें अलग कार्य अनुमति पत्र प्राप्त करने से छूट प्रदान करता है। ओसीआईसी को आर्थिक, वित्तीय एवं शैक्षिक मामलों में एनआरआई के समान रखा जाता है। उन्हें राजनीतिक अधिकार, कृषि एवं रोपण संपत्तियां खरीदने या सार्वजनिक पद पर आसीन होने का अधिकार नहीं है। वे पर्वतारोहण, मिशनरी कार्य, अनुसंधान कार्य एवं संरक्षित एवं प्रतिबंधित क्षेत्रों का भ्रमण करने के सिवाय सभी गतिविधियां कर सकते हैं। उन्हें देश में आगमन पर फॉरनर्स रीजनल रजिस्ट्रेशन ऑफिसर (एफआरआरओ) कार्यालय में पंजीकरण कराने से छूट दी गई है और देश में जब तक चाहें रह सकते हैं।

एकल नागरिकता

भारत में केवल एक ही नागरिकता की व्यवस्था की गई है। यद्यपि भारत का संविधान संघात्मक है, फिर भी यहां नागरिकों को केवल एक ही नागरिकता प्रदान की गई है, जबकि विश्व के अन्य विशेषतः अमेरिकी और स्विट्जरलैंड के परिसंघीय संविधानों में दोहरी नागरिकता की व्यवस्था है। इन देशों में राष्ट्रीय नागरिकता के अतिरिक्त उस राज्य की नागरिकता भी प्राप्त होती है जहां उस व्यक्ति का जन्म हुआ है अथवा जहां वह स्थायी रूप से निवास करता है। किंतु भारत में प्रत्येक व्यक्ति को एक ही राष्ट्रीय नागरिकता उपलब्ध है चाहे वह किसी भी राज्य का निवासी हो।

लेकिन कुछ परिस्थितियों में इसके अपवाद के लिए संसद को कानून बनाने का अधिकार प्रदान किया गया है। संविधान के अनुच्छेद 16(3) के अधीन संसद को यह अधिकार प्राप्त है कि वह किसी राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के अधीन किसी वर्ग या वर्गों के नियोजन के लिए यह अधिकथित करे कि उस राज्य या संघ राज्य क्षेत्र में निवास करना आवश्यक अर्हता होगी। राज्य में नियोजन की दशा में अपवाद इसलिए रखा गया है जिससे कार्य में दक्षता हो क्योंकि स्थानीय परिस्थितियों से परिचय पर कुछ कार्य आधारित होते हैं। मुख्यतः ये अपवाद इस प्रकार हैं:

1. संसद द्वारा अनुच्छेद-16(3) में प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करके लोक नियोजन (निवास की अपेक्षा) अधिनियम, 1957 सीमित अवधि के लिए अधिनियमित किया गया था। इस अधिनियम द्वारा संसद ने केंद्रीय सरकार को आंध्र प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर और त्रिपुरा में अराजपत्रित पदों पर नियुक्ति के लिए निवास की अपेक्षाएं निहित करने के लिए नियम बनाने की शक्ति दी थी। 1974 में आंध्र प्रदेश को छोड़कर इस अधिनियम को संसद द्वारा निरस्त कर दिया गया, जहां, राष्ट्रपतीय आदेश द्वारा, 32वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1973 के अंतर्गत, राज्य के विभिन्न हिस्सों से सम्बद्ध लोगों को लोक नियोजन में समान रूप से अवसर प्रदान किए गए और राज्य के विभिन्न हिस्सों के लिए शिक्षा एवं अन्य उपबंध किए गए। इन मामलों के निपटारे के लिए एक प्रशासनिक अधिकरण की स्थापना का प्रावधान भी किया गया। आंध्र प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम 2014 द्वारा राष्ट्रपतीय आदेश आंध्र प्रदेश और तेलंगाना दोनों राज्यों पर लागू किया गया है।

2. कोई राज्य अपने राज्य के निवासियों के लाभ के लिए कोई कानून बना सकता है क्योंकि संविधान के अनुच्छेद-15(1) में केवल, धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध किया गया है। इसमें निवास स्थान का उल्लेख नहीं है। इस प्रकार संविधान भी यह अनुमति देता है कि राज्य संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों से भिन्न विषयों में अपने निवासियों को लाभ प्रदान कर सकता है। उच्चतम न्यायालय ने भी इसका समर्थन करते हुए कहा कि अनुच्छेद 15 में निवास स्थान के आधार पर विभेद को प्रतिषिद्ध नहीं किया गया है, इसलिए राज्य अपने शिक्षण संस्थानों में फीस आदि के विषय में अपने निवासियों को रियायत दे सकता है [जोशी बनाम मध्य भारत राज्य (1955)]।

3. जम्मू-कश्मीर राज्य के विधानमण्डल के निम्नलिखित विषयों के संबंध में राज्य में स्थायी रूप से निवास करने वाले व्यक्ति को अधिकार तथा विशेषाधिकार प्रदान करने की शक्ति प्रदान की गयी हैः

(i) राज्य के अधीन नियोजन के संदर्भ में,

(ii) राज्य में अचल सम्पत्ति के अर्जन के संदर्भ में,

(iii) राज्य में स्थायी रूप से बस जाने के संदर्भ में, तथा;

(iv) छात्रवृत्तियों अथवा इसी प्रकार की सहायता के संदर्भ में।

7. मौलिक अधिकार

मौलिक अधिकार का अर्थ एवं प्रकृति

लोकतांत्रिक व्यवस्था में मौलिक अधिकार वे अधिकार हैं, जो किसी व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता एवं उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व के समुचित एवं बहुमुखी विकास हेतु अनिवार्य हैं तथा जिन्हें राज्य के विरुद्ध न्यायपालिका का संरक्षण प्राप्त होता है। इन अधिकारों के अभाव में लोकतंत्र मात्र एक कल्पना ही सिद्ध होगा।

वे अधिकार जो व्यक्ति के जीवन एवं उसके सम्पूर्ण विकास हेतु मौलिक एवं अनिवार्य होने के कारण संविधान द्वारा अपने नागरिकों को प्रदान किए जाते हैं और जिन अधिकारों में राज्य द्वारा भी हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता, मौलिक अधिकार कहलाते हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि, व्यक्ति के इन अधिकारों को मौलिक अधिकार क्यों कहा जाता है? तो इस प्रश्न के प्रत्युत्तर में यह कहा जा सकता है कि

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

ये अधिकार व्यक्ति के पूर्ण भौतिक, मानसिक एवं नैतिक विकास हेतु अत्यावश्यक हैं। इनके अभाव में उसके व्यक्तित्व का विकास अवरुद्ध हो जाएगा। इसलिए लोकतांत्रात्मक राज्य में प्रत्येक नागरिक को विकास अवरुद्ध हो जाएगा। इसलिए अधिकार प्रदान किए जाते हैं। इन अधिकारों को 'मौलिक' इसलिए कहा जाता है क्योंकि इन्हें देश की सर्वोच्च विधि अर्थात् संविधान में प्रमुखता से स्थान दिया जाता है और साधारणतः संवैधानिक संशोधन की प्रक्रिया के अतिरिक्त इनमें किसी अन्य प्रकार से परिवर्तन नहीं किया जा सकता और न ही राज्य द्वारा इन अधिकारों का किसी भी रूप में, पूर्णतः अथवा आंशिक, अपहरण ही किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त मौलिक अधिकार साधारणतः अनुल्लंघनीय होते हैं और संसद, सरकार अथवा बहुमत दल द्वारा उनका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता। ऐसा होने की स्थिति में पीड़ित व्यक्ति अपने अधिकारों की रक्षार्थ न्यायालय में शरण ले सकता है। व्यक्ति के अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए न्यायपालिका द्वारा सभी आवश्यक कदम उठाए जा सकते हैं।

किसी भी लोकतंत्र की सफलता या असफलता इस बात पर निर्भर करती है कि देश की जनता को आमतौर पर कौन-सी नागरिक स्वतंत्रताएं प्राप्त हैं। नागरिक के व्यक्तित्व का विकास का नागरिक स्वतंत्रता के साथ अन्योन्याश्रय संबंध है और व्यक्तित्व के विकास का नागरिक स्वतंत्र समाज में ही होती है। जन-कल्याण की प्रगति भी इसी में निहित है।

प्रत्येक लोकतंत्र राज्य की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए अपने नागरिकों को विकास के अधिक से अधिक अवसर प्रदान करता है। प्रायः सभी लोकतंत्र इसी प्रयोजन के लिए मौलिक अधिकारों की एक सूची अपने संविधान द्वारा प्रत्याभूत करके उन्हें कार्यपालिका तथा विधानमण्डल के अतिक्रमण से सुरक्षित रखते हैं।

सिद्धांततः मौलिक अधिकारों का अर्थ है—परिसीमित प्रशासन। परिसीमित प्रशासन का उद्देश्य है—कार्यपालिका और विधानमण्डल की स्वतंत्र अथवा सम्मिलित रूप में तानाशाही की प्रवृत्ति पर प्रतिबंध लगाना। जिन संविधानों में मौलिक अधिकारों की व्यवस्था नहीं होती, वह बहुत जल्दी तानाशाही के साधन बन जाते हैं। अतएव मौलिक अधिकारों का आधारभूत सिद्धांत यह है कि राज्य की शक्ति पर संवैधानिक नियंत्रण के द्वारा व्यक्ति की मूलभूत स्वतंत्रताओं की सुरक्षा की जाए।

मौलिक अधिकार लोकतंत्र के आधार-स्तम्भ हैं। मौलिक अधिकार इस दृष्टिकोण से भी लोकतंत्र के लिए अनिवार्य हैं कि उनके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति के पूर्ण शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास को सुरक्षा प्रदान की जाती है। इनके द्वारा उन आधारभूत स्वतंत्रताओं तथा स्थितियों की व्यवस्था की जाती है, जिनके बिना उचित रूप में नागरिक जीवन व्यतीत नहीं किया जा सकता।

मौलिक अधिकार देश की राजनीतिक प्रणाली में एक दल विशेष की तानाशाही होने से रोकने के लिए अत्यंत आवश्यक है। ये व्यक्ति की स्वतंत्रता और सामाजिक नियंत्रण के बीच उचित सामंजस्य स्थापित करते हैं। इनके द्वारा एक ओर व्यवस्थापिका और कार्यपालिका को कानून द्वारा निश्चित सीमाओं में रहने के लिए बाध्य किया जाता है और दूसरी तरफ नागरिकों को शासन के स्वेच्छाचारी संचालन के विरुद्ध जनमत के निर्माण हेतु उचित अवसर प्रदान किए जाते हैं। इस प्रकार मौलिक अधिकार नागरिकों को न्याय और समुचित व्यवहार की सुरक्षा प्रदान करते हैं और राज्य के बढ़ते हुए हस्तक्षेप तथा व्यक्ति की स्वतंत्रता के बीच संतुलन स्थापित करते हैं। ये अधिकार मानवीय स्वतंत्रता के रक्षक और संरक्षक दोनों ही हैं।

जवाहरलाल नेहरू ने अपने सुप्रसिद्ध 'उद्देश्य-प्रस्ताव' में यह कहा था कि संविधान का लक्ष्य एक ऐसे गणतंत्र की स्थापना का होना चाहिए, जिसमें सभी के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की व्यवस्था हो। इसी 'उद्देश्य-प्रस्ताव' से संविधान की प्रस्तावना का जन्म हुआ और इसी में मूलभूत बातों का सार निहित है।

भारत में मौलिक अधिकारों

मौलिक अधिकारों के विचार का सूत्रपात वर्ष 1215 में इंग्लैंड से हुआ। हालांकि फ्रांस की राज्य क्रांति से विश्व को स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व का संदेश मिला। फ्रांस में 1789 के संविधान में मानवीय अधिकारों की घोषणा को शामिल करके व्यक्ति के जीवन के लिए आवश्यक कुछ अधिकारों को संवैधानिक मान्यता प्रदान करने की प्रथा प्रारंभ की गई। इसके पश्चात् 1791 में अमेरिका के संविधान में संशोधन करके 'अधिकार पत्र' को सम्मिलित किया गया।

भारत में मौलिक अधिकारों के प्रति जागरूकता भी विश्व के इन देशों द्वारा 'अधिकारों का घोषणा-पत्र' जारी करने के पश्चात् उत्पन्न हुई। वास्तव में ये घोषणा-पत्र ही भारतीय जन-मानस के लिए प्रेरणा स्रोत रहे। सर्वप्रथम भारत में मौलिक अधिकारों की घोषणा के लिए 1895 में मांग की गई। भारत में अंग्रेजी राज्य का स्वरूप पूर्णतः स्वेच्छाचारी था। इस स्वेच्छाचारी प्रवृत्ति के कारण अंग्रेजी सरकार लोगों पर मुकदमा चलाए बिना उन्हें नजरबंद कर देती थी। इन अत्याचारों की प्रतिक्रियास्वरूप भारतीय संविधान विधेयक या अधिकारों की मांग पर जोर देना प्रारंभ कर दिया था।

श्रीमती ऐनी बेसेंट द्वारा 1915 में प्रवर्तित भारतीय संविधान में 'होमरूल' में मूल अधिकारों की मांग प्रस्तुत की गई। 1925 में 'दि कॉमनवेल्थ ऑफ इंडिया बिल' में भी इन अधिकारों की मांग की गई। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 1927 के 'मद्रास अधिवेशन' में एक संकल्प पास कर निर्धारित किया गया कि भारत के भावी संविधान का आधार मूल अधिकारों की घोषणा होनी चाहिए।

1928 में मोतीलाल नेहरू द्वारा प्रस्तुत की गयी रिपोर्ट में भी मौलिक अधिकारों की मांग की गई। मार्च 1931 में कांग्रेस के कराची अधिवेशन तथा सितम्बर में द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में गांधी जी द्वारा मूल अधिकारों की मांग को दोहराया गया। इसके बावजूद 1934 में संयुक्त संसदीय समिति ने इस मांग को अस्वीकार कर दिया और 1935 के भारत सरकार अधिनियम में मूल अधिकारों को शामिल नहीं किया गया।

मूल अधिकार और संविधान के अन्य उपबंधों द्वारा प्रत्याभूत अधिकारों के बीच अंतर

भारतीय संविधान के भाग-III में सम्मिलित मूल अधिकारों और अन्य भाग में अंतर्विष्ट मर्यादाओं से उत्पन्न होने वाले ऐसे अधिकारों (न्याय निर्णय के क्षेत्र से बाहर के अधिकारों को छोड़कर उदाहरणार्थ 'राज्य के नीति-निदेशक तत्व' जो भाग-IV में है) के बीच, जो समान रूप से न्यायालय द्वारा प्रवृत्त कराए जा सकते हैं, क्या विभिन्नता है? इन दोनों वर्गों के अधिकार समान रूप से न्यायाधीन हैं, उच्चतम न्यायालय में सीधे आवेदन करके अनुच्छेद 32 के अधीन उपचार पाने का अधिकार भाग-III में मूल अधिकार के रूप में सम्मिलित किया गया है। यह उपचार मूल अधिकार की दशा में ही उपलब्ध होता है। यदि अधिकार संविधान के किसी अन्य उपबंध से प्राप्त होता है, उदाहरण के लिए अनुच्छेद 265 या अनुच्छेद 301, तो व्यथित व्यक्ति सामान्यवाद लाकर या उच्च न्यायालय में अनुच्छेद 226 के अधीन आवेदन देकर अनुतोष प्राप्त कर सकेगा किंतु अनुच्छेद 32 के अधीन आवेदन नहीं हो सकेगा जब तक कि ऐसे अधिकार के अतिक्रमण के कारण मूल अधिकार का उल्लंघन न होता हो।

कुछ संविधानों में मूल अधिकार सांविधानिक संशोधन द्वारा परिवर्तित नहीं किए जा सकते। "मूल" शब्द से यह ध्वनि भी निकलती है। दूसरे अर्थ में संविधान के अन्य उपबंधों की तुलना में उन्हें उच्चतर स्थान प्रदान किया जाता है किंतु संविधा में यह सिद्धांत स्वीकार नहीं किया गया है। संविधान के संशोधनों से और न्यायि विनिश्चयों से यह निर्वचन प्राप्त होता है।

यह ठीक है कि संविधान के किसी भाग को सामान्य विधान द्वारा परि नहीं किया जा सकता जब तक कि स्वयं संविधान में इसके लिए प्राधिकार न गया हो। किंतु संविधान के सभी भाग, मूल अधिकार सहित, अनुच्छेद 368 के संशोधन अधिनियम पारित करके संशोधित किए जा सकते हैं किंतु आधारि में संशोधन नहीं हो सकता।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

संविधान के निर्माण के लिए संविधान सभा के गठन की योजना प्रस्तुत करने वाले कैबिनेट मिशन द्वारा सुझाव दिया गया कि मूल अधिकारों, अल्पसंख्यकों के अधिकारों की सिफारिश करने के लिए एक समिति का गठन किया जाना चाहिए, इसलिए संविधान सभा ने वल्लभभाई पटेल की अध्यक्षता में परामर्श समिति का गठन किया। परामर्श समिति ने 27 फरवरी, 1947 को पांच उप-समितियों की नियुक्ति की जिनमें एक मूल अधिकारों के संबंध में थी। मौलिक अधिकारों से सम्बंधित इस उप-समिति के सदस्य थे—जे.बी. कृपलानी, मीनू मसानी, के.टी. शाह, अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर, के.एम. मुंशी, के.एम. पाणिक्कर तथा राजकुमारी अमृत कौर आदि।

परामर्श समिति तथा उप-समिति की सिफारिशों के आधार पर संविधान में मूल अधिकारों को शामिल किया गया।

भारत के संविधान के भाग-III के अंतर्गत अनुच्छेद-12 से 35 तक मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में विस्तृत वर्णन किया गया है। इन अधिकारों का निर्धारण संविधान सभा द्वारा सरदार वल्लभभाई पटेल की अध्यक्षता में गठित एक समिति द्वारा किया गया था।

मौलिक अधिकारों का वर्गीकरण

भारतीय संविधान द्वारा अपने नागरिकों को आरम्भ में सात मौलिक अधिकार प्रदान किए गए थे—(i) समानता का अधिकार; (ii) स्वतंत्रता का अधिकार; (iii) सम्पत्ति का अधिकार; (iv) शोषण के विरुद्ध अधिकार; (v) धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार; (vi) शिक्षा एवं संस्कृति का अधिकार, तथा; (vii) संवैधानिक उपचारों का अधिकार। किंतु, बाद में 44वें संवैधानिक संशोधन (1978) द्वारा सम्पत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकारों की सूची में से निकाल दिया गया। ऐसा इसलिए किया गया क्योंकि इस अधिकार के कारण देश में व्याप्त जमींदारी प्रथा का उन्मूलन तथा भू-सुधार सम्बन्धी कानूनों का क्रियान्वयन कर पाना सरकार के लिए सम्भव नहीं हो पा रहा था। वर्तमान समय में सम्पत्ति का अधिकार केवल एक कानूनी अधिकार के रूप में है। गौरतलब है कि संविधान के अनुच्छेद 300A में इसे स्थान दिया गया है। प्रकार भारतीय नागरिकों को अब निम्नलिखित छह मौलिक अधिकार ही प्राप्त हैं:

1. समानता का अधिकार, 2. स्वतंत्रता का अधिकार, 3. शोषण के विरुद्ध अधिकार, 4. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार, 5. संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार, तथा; 6. सवैधानिक उपचारों का अधिकार।

1. समानता का अधिकार

समानता का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को राजनीतिक समानता, नागरिक समानता, सामाजिक समानता और आर्थिक समानता सुलभ हो। संविधान के पांच अनुच्छेद 14, 15, 16, 17 और 18 समानता के अधिकार की व्याख्या करते हैं, जो निम्नलिखित हैं:

विधि के समक्ष समता

अनुच्छेद-14 के अनुसार "राज्य भारत के राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा।"

प्रथम दृष्ट्या "विधि के समक्ष समता" और "विधियों का समान संरक्षण" अभिव्यक्तियां समरूप जान पड़ती हैं किंतु वास्तव में इनका अर्थ भिन्न है। विधि के समक्ष समानता एक नकारात्मक संकल्पना है, जिसमें यह विवक्षा है कि किसी को व्यक्ति को कोई विशेष अधिकार नहीं होंगे और सभी वर्ग समान रूप से सामान्य विधि के अधीन होंगे। "विधियों का समान संरक्षण" अपेक्षाकृत अधिक सकारात्मक संकल्पना है। इसमें यह विवक्षा है कि समान परिस्थितियों में समता का व्यवहार किया जाएगा।

विधि के समक्ष समता के विरुद्ध भारत के संविधान में निम्नलिखित अपवाद प्रदान किए गए हैं—(i) राष्ट्रपति या राज्य का राज्यपाल अपने पद की शक्तियों के प्रयोग और कर्तव्यों के पालन के लिए या उन शक्तियों का प्रयोग और कर्तव्यों का पालन करते हुए अपने द्वारा किए गए या किए जाने के लिए तात्पर्यित किसी कार्य के लिए न्यायालय के प्रति उत्तरदायी नहीं होगा। (ii) राष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल के विरुद्ध उसकी पदावधि के दौरान किसी न्यायालय में किसी भी प्रकार की दाण्डिक कार्यवाही संस्थित नहीं की जाएगी या चालू नहीं रखी जाएगी। (iii) राष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल के रूप में अपना पद ग्रहण करने से पहले या उसके पश्चात् उसके द्वारा अपनी वैयक्तिक हैसियत से किए गए या किए जाने के लिए तात्पर्यित किसी कार्य के संबंध में कोई सिविल कार्यवाहियां, जिनमें राष्ट्रपति या ऐसे राज्य के राज्यपाल के विरुद्ध अनुतोष का दावा किया जाता है, उसकी पदावधि के दौरान किसी न्यायालय में तब तक संस्थित नहीं की जाएंगी जब तक कार्यवाहियों की प्रकृति, उनके लिए वाद हेतु ऐसी कार्यवाहियों को संस्थित करने वाले पक्षकार का नाम, वर्णन, निवास-स्थान और उस अनुतोष का, जिसका वह दावा करता है, कथन करने वाली लिखित सूचना यथास्थिति, राष्ट्रपति या राज्यपाल को परिदत्त किए जाने या उसके कार्यालय में छोड़े जाने के पश्चात् दो मास का समय समाप्त नहीं हो गया है। (अनुच्छेद-361) उपरोक्त उन्मुक्तियों से, (a) राष्ट्रपति के विरुद्ध महाभियोग की कार्यवाहियां; (b) भारत सरकार या राज्य सरकार के विरुद्ध वाद या अन्य समुचित कार्यवाहियां वर्जित नहीं होंगी।

विधि के समान संरक्षण से अर्थ है—"समान लोगों के साथ समान व्यवहार होगी।" दूसरे शब्दों में, विधि द्वारा अधिरोपित दायित्वों के संबंध में समान परिस्थितियों में समान व्यवहार का अधिकार है। किसी का भी पक्ष नहीं लिया जाना चाहिए जिसमें भिन्न व्यवहार करने के लिए युक्तियुक्त औचित्य न हो। इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति पर समान रूप से कर लगाया जाएगा किंतु यह अर्थ है कि समान व्यक्तियों पर समान मानक से कर लगाया जाएगा।

यदि वर्गीकरण के लिए युक्तियुक्त आधार है तो विधानमंडल को यह अधिकार है कि वह विभेदकारी व्यवहार करे। उदाहरण के लिए विधानमंडल (i) कुछ वर्गों की सम्पत्ति का कराधान से बिल्कुल छूट दे सकता है, जैसे—पूर्व कार्य पुस्तकालय आदि; (ii) विभिन्न व्यापार और व्यवसाय करने वालों पर भिन्न-भिन्न विनिर्दिष्ट कर लगा सकता है, (iii) स्थावर और जंगम सम्पत्ति पर भिन्न रीति से कर लगा सकता है। इस प्रकार समान संरक्षण की प्रत्याभूति समान परिस्थितियों में समान व्यवहार की प्रत्याभूति है। विभिन्न परिस्थितियों में विभेद करने की अनुज्ञा है।

भेदभाव का निषेध

अनुच्छेद 15 (1) में "राज्य, किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।

(2) कोई नागरिक केवल धर्म, मूलवंश जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर:

(क) दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश, या (ख) पूर्णतः या भागतः राज्य-निधि से पोषित या साधारण जनता के प्रयोग के लिए समर्पित कुओं, तालाबों, स्नानघाटों, सड़कों और सार्वजनिक समागम के स्थानों के उपयोग के बारे में किसी भी निर्योग्यता दायित्व, निर्बन्धन या शर्त के अधीन नहीं होगा।

(3) इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को महिलाओं और बालकों के लिए कोई विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।

(4) इस अनुच्छेद की या अनुच्छेद 29 के खंड-2 की कोई बात राज्य क सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए नागरिकों के किन्हीं वर्गों की उन्न के लिए या अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए कोई वि उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।

यह स्पष्ट हो जाता है कि इस अनुच्छेद का विषय बहुत विस्तृत है। में शब्द 'केवल' का प्रयोग अर्थपूर्ण है। इनमें से किसी एक या अधिक पर तथा अन्य आधार या आधारों पर आधारित विभेद इस अनुच्छेद प्रभावित नहीं होगा और न ही निवास पर आधारित विभेद अवैध

खंड-2 में इस प्रतिषेध को विशेष रूप से लागू करने का उप गया है। स्पष्ट है कि प्रतिषेध राज्य एवं साधारण जनता दोनों की पर लागू होता है।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

खंड-3 तथा खंड-4 में विभेद न करने के सामान्य सिद्धांतों के अपवाद अंतर्निहित हैं। ये राज्य को क्रमशः स्त्रियों तथा बच्चों के लिए और सामाजिक तथा शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए नागरिकों के कुछ वर्गों की उन्नति के लिए या अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के संरक्षण के लिए कतिपय कानूनों को अधिकार देते हैं। समाज के इन वर्गों के संरक्षण के लिए कतिपय कानूनों की जरूरत तथा औचित्य को प्रचुर रूप में प्रमाणित करती है। किंतु इन विशेष उपबंधों के बावजूद, यह निर्णय दिया गया है कि अनुच्छेद 14 के अधीन सामान्य प्रतिषेध ऐसे मामलों में भी लागू होगा; राज्य जो भी विशेष प्रावधान करे, वे मनमाने या अनुचित नहीं होने चाहिए।

खंड-4 में जो सबसे बड़ी समस्या पैदा की, वह इस बात के निर्धारण के संबंध में है कि कौन व्यक्ति "सामाजिक तथा शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों" है। इसका निर्धारण करने के लिए उचित मानदंड तैयार करने में न्यायालय ने निर्णय दिया कारक अपनी भूमिका निभाएंगे। जैसा कि उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया है; इस बात को सुनिश्चय करने के लिए कि अमुक वर्ग पिछड़ा है या नहीं, व्यक्ति की जाति एकमात्र कसौटी नहीं हो सकती। चिलुकेला बनाम मेसूर के मामले में उसने निर्णय दिया कि हालांकि जाति किसी वर्ग के पिछड़ेपन का सुनिश्चय करने के लिए एक प्रासंगिक कारण है किंतु इसमें ऐसी कोई बात नहीं है जो संबंधित प्राधिकारी को नागरिकों के किसी वर्ग के विशेष पिछड़ेपन का निर्धारण करने से रोकती हो, बशर्ते वह जाति के हवाले के बिना ऐसा कर सकता हो। एक और मामले में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि पिछड़ेपन का निर्धारण करने के लिए जाति तथा निर्धनता दोनों ही प्रासंगिक है। किंतु न तो केवल जाति और न ही केवल निर्धनता निर्धारण की कसौटी होगी।

लोक नियोजन में अवसर की समानता

राज्य द्वारा केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर विभेद नहीं किया जाएगा। इस साधारण आश्वासन के उप-सिद्धांत के रूप में संविधान ने लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता की प्रत्याभूति दी है। अनुच्छेद 16 यह कहता है कि:

(1) राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन से सम्बंधित विषयों में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समता होगी।

(2) कोई नागरिक केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्भव, जन्म-स्थान, निवास या इनमें से किसी के आधार पर राज्य के अधीन किसी नियोजन या पद के संबंध में अपात्र नहीं होगा या उससे विभेद नहीं किया जाएगा।

राज्य की सेवा से किसी व्यक्ति को केवल इस आधार पर अपवर्जित नहीं किया जा सकता कि वह ब्राह्मण है। यद्यपि विभिन्न जातियों में अनुपात या कोटे के अनुसार पदों के वितरण के कारण यह होता है। उल्लेखनीय है कि राज्य को यह समता न केवल लोक सेवाओं में नियुक्ति के विषय में देखनी होगी बल्कि अन्य लोक नियोजन में भी इसका ध्यान रखना होगा जहां राज्य और कर्मचारी के बीच स्थायी और सेवक का संबंध है। विभेद का प्रतिषेध प्रारंभिक नियुक्ति के विषय में भी हैं और प्रोन्नति तथा सेवा के पर्यवसान के विषय में भी।

(3) संसद कानून बनाकर किसी राज्य या स्थानीय प्राधिकारी के अधीन ने वाले किसी वर्ग या वर्गों के पद पर नियोजन या नियुक्ति के संबंध में स विषयक प्रावधान कर सकती है। इस प्रकार के प्रावधान के लिए संसद क नियोजन अधिनियम, 1957 पारित करके सरकार को यह शक्ति दी थी ह आंध्र प्रदेश राज्य, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर तथा त्रिपुरा संघ राज्य क्षेत्र पदों तथा सेवाओं के संबंध में निवास स्थान संबंधी अर्हता निहित कर है। लेकिन 1974 में इसे समाप्त कर दिया गया। केवल आंध्र प्रदेश के संविधान के अनुच्छेद 371-घ में विशेष प्रावधान किया गया है। राज्य पिछड़े हुए नागरिकों के किसी वर्ग के पक्ष में, जिनका प्रतिनिधित्व य में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों या पदों का प्रावधान कर सकता है। आरक्षण, विशेष कारणों के सिवाय, पे अधिक नहीं होना चाहिए।

(4क) अनुसूचित जनजाति के अधीन सेवाओं में पर्या... वर्गों के पदों पर प्रोन्नति के मामले नहीं करेगी।

इस संशोधन का प्रभाव यह है—

(i) अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों में सरकारी नौकरियों में प्रोन्नति में आरक्षण किया जा सकेगा।

(ii) राज्य आरक्षण के लिए उपबंध कर सकेगा अर्थात् निर्धारित करेगा कि आरक्षण कितना और कैसा होगा।

(iii) राज्य को आरक्षण करने के पहले यह राय बनानी होगी कि राज्य या जनजाति का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है।

उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि प्रोन्नति में आरक्षण अनिष्टकर बात है क्योंकि जो कर्मचारी एक ही प्रवर्ग और ज्येष्ठता के अपने सहकर्मियों द्वारा अतिष्ठित कर दिए जाते हैं। जबकि उन सहकर्मियों दावे का एकमात्र आधार जाति है गुणागुण नहीं। इसके कारण असंतोष कटुता का जन्म होता है। सरकार ने यह अधिनियम राजनीतिक कारणों से हैं। इसके पीछे व्यापक राष्ट्रीय विचार नहीं है।

मंडल आयोग प्रकरण

इंदिरा श्वाने प्रकरण में, जिसे मंडल आयोग प्रकरण के तौर पर भी माना जाता उच्चतम न्यायालय ने सरकारी सेवाओं में आरक्षण के मुद्दे पर कुछ महत्वपूर्ण सं बिंदु रखे:

- अनुच्छेद 16(4) विस्तृत प्रावधान करता है जिसे रोजगार के मामले में वर्गों के पक्ष में बनाया जा सकता है।
- पिछड़े वर्गों के नागरिकों को संविधान में परिभाषित नहीं किया गया है। व्यवसाय, गरीबी और सामाजिक पिछड़ेपन के बीच आवश्यक सम्पर्क है।
- संदर्भ में निम्न जाति को पिछड़ों के तौर पर देखा जाता है। एक जाति वर्ग बना लेती है।
- हिंदू समाज में पिछड़े वर्गों की पहचान जाति के संदर्भ के साथ-साथ मापदंडों—परम्परागत व्यवसाय, गरीबी, निवास स्थान, शिक्षा का अभाव इत्यादि उन समुदायों में जहां जाति मान्य नहीं है अन्य मापदंड लागू होंगे।
- अनुच्छेद 16(4) द्वारा उल्लिखित पिछड़ापन मुख्यतः सामाजिक है। यह नहीं कि यह सामाजिक एवं शैक्षिक दोनों हो।
- "साधन परीक्षण" (Means-test) का उद्देश्य आय सीमा आरोपित करके विशेष लोगों को पिछड़े वर्ग से बाहर करना है। जिनकी आय सीमा से अधिक है उन्हें क्रीमी लेयर माना जाता है। आय और संपत्ति के विस्तार को सामाजिक उन्न के एक उपकरण के तौर पर लिया जा सकता है।
- आरक्षण प्राप्त करने के लिए वह वर्ग पिछड़ा होना चाहिए और राज्य के अधी नौकरियों में उसका पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं होना चाहिए।
- अनुच्छेद 16(4) में उल्लिखित आरक्षण 50 प्रतिशत से अधिक नहीं हो चाहिए।
- 50 प्रतिशत का नियम प्रत्येक वर्ष के लिए होगा। इसे वर्ग, सेवा या रिक्ति इत्यादि की कुल संख्या से सम्बद्ध नहीं किया जा सकता।
- अनुच्छेद 16(4) के अंतर्गत पदों में आरक्षण केवल प्रारंभिक नियुक्ति के सीमित होगा और पदोन्नति के मामले में आरक्षण देने पर विस्तारित नहीं होगा। पदोन्नति में आरक्षण मौजूद है तो यह 5 वर्षों तक जारी रहेगा। 77वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1995 द्वारा उपवाक्य 4(क) को जोड़कर समय सीमा को हटा दिया गया और अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए पदोन्नति में आरक्षण के निरंतरता प्रदान की गई।
- 85वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2002 में 16(4क) को संशोधित किया गया। इसमें अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के सरकारी कर्मचारियों को आरक्षण नियमों के अंतर्गत 'अनुवर्ती वरिष्ठता' के आधार पर प्रोन्नति देने की व्यवस्था है।
- पिछड़े वर्गों की पहचान न्यायिक समीक्षा का विषय है।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

(4ख) इस नए खंड में यह उपबंध किया गया है कि किसी वर्ष में रिक्त स्थानों की कुल संख्या की 50 प्रतिशत की सीमा का अवधारण करने के लिए जिस वर्ष में रिक्त स्थान भरे जा रहे हैं उस वर्ष की रिक्तियों में वे रिक्तियां नहीं जोड़ी जाएंगी जो विगत वर्षों में भरी नहीं गई हैं।

दरअसल 81वें संशोधन से खंड (4 ख) अंतःस्थापित करके मंडल वाले मामले में न्यायालय द्वारा घोषित इस नियम को अकृत किया गया कि आरक्षित प्रवर्ग के लिए जो रिक्त स्थान बकाया हैं और जो किसी कारण से किसी पूर्ववर्ती वर्ष में भरे नहीं जा सके हैं उन पर भी 50 प्रतिशत की अधिकतम सीमा लागू होगी।

इस संशोधन का परिणाम यह है कि अग्रेषित किए गए रिक्त स्थान सदैव किसी विशिष्ट वर्ष में आने वाले रिक्त स्थान से अलग रहेंगे। 50 प्रतिशत के कोटे से अधिक आरक्षण हो गया है या नहीं यह पता करने के लिए इन दोनों का जोड़ा नहीं जाएगा।

संविधान (85वां संशोधन) अधिनियम, 2001 द्वारा अनुच्छेद 16 के खंड (4क) में कुछ शब्द डाले गए। इसका उद्देश्य उच्चतम न्यायालय ने वीरपाल सिंह चौहान और अजित सिंह मामले में जो विधि घोषित की थी उसे निष्प्रभावी करना था। उच्चतम न्यायालय ने यह कहा था कि अनुसूचित जाति और जनजाति के जिन सरकारी सेवकों की प्रोन्नति हो जाती है उन्हें प्रोन्नति के परिणामस्वरूप ज्येष्ठता का लाभ नहीं मिलेगा। 85वें संशोधन द्वारा न्यायालय द्वारा घोषित विधि को उलटते हुए यह अधिनियमित किया गया है कि ऐसे सरकारी सेवकों को प्रोन्नति के बाद पारिणामिक ज्येष्ठता का लाभ मिलेगा। यह संशोधन भूतलक्षी प्रभाव से 17 जून, 1995 से लागू किया गया है।

(5) इस अनुच्छेद की कोई बात किसी ऐसी विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी जो यह उपबंध करती है कि किसी धार्मिक या सांप्रदायिक संस्था के कार्यकलाप से संबंधित कोई पदधारी या उसके शासी निकाय का कोई सदस्य किसी विशिष्ट धर्म का मानने वाला या विशिष्ट संप्रदाय का ही हो।

अस्पृश्यता का उन्मूलन

सामाजिक समानता को और अधिक व्यावहारिकता प्रदान करने के लिए अस्पृश्यता का निषेध किया गया है। अनुच्छेद 17 अस्पृश्यता का अंत करके, छुआछूत के व्यवहार को दण्डनीय अपराध घोषित करता है।

अनुच्छेद 17 के साथ पढ़े जाने पर अनुच्छेद-35 संसद को अस्पृश्यता के आचरण के लिए दंड विहित करने के लिए विधि बनाने की शक्ति देता है। इस शक्ति का प्रयोग करते हुए संसद ने अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955 अधिनियमित किया था। 1976 में इसे और कठिन बनाया गया और इसका नाम परिवर्तित करके इसे नया नाम, सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 दिया गया। इस अधिनियम में निम्न दंड विहित किए गए हैं:

- किसी व्यक्ति को सार्वजनिक पूजा स्थल में प्रवेश करने से या ऐसे स्थान में पूजा करने से रोकना।
- अस्पृश्यता के आधार पर अनुसूचित जाति के किसी सदस्य का अपमान करना।
- प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अस्पृश्यता का उपदेश करना।
- ऐतिहासिक, दार्शनिक, धार्मिक या अन्य आधार पर अस्पृश्यता को न्यायोचित ठहराना।
- किसी दुकान, जलपान गृह, होटल या सार्वजनिक मनोरंजन के स्थान पर प्रवेश नहीं करने देना।
- अस्पताल में प्रवेश से इंकार करना।
- कोई माल बेचने या सेवाएं देने से इंकार करना।

गौरतलब है कि वर्ष 1977 में इस अधिनियम के अंतर्गत नियम "नागरिक अधिकार संरक्षण नियम, 1977" से संबंधित अधिसूचना जारी की गई। यह अधिनियम पूरे देश में लागू होता है और छुआछूत करने या इसे बढ़ावा देने वालों को सजा के दायरे में लाता है। इस अधिनियम को संबंधित राज्य सरकारों तथा केंद्रशासित प्रदेशों को प्रशासनों द्वारा लागू किया गया।

इसी दिशा में 30 जनवरी, 1990 को अनुसूचित जाति एवं जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 (पीओए) अस्तित्व में आया। इस कानून का उद्देश्य गैर-अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लोगों द्वारा अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के अंतर्गत व्यापक नियमों से युक्त का निवारण करना है। इस अधिनियम के अंतर्गत व्यापक नियमों से युक्त 'अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) नियम, 1995' संबंधी अधिसूचना वर्ष 1995 में जारी की गई थी। जिसमें अन्य बातों के अतिरिक्त राहत एवं पुनर्वास संबंधी नियम भी शामिल हैं। जम्मू एवं कश्मीर को छोड़कर अधिनियम के दायरे में पूरा देश आता है।

अस्पृश्यता की समाप्ति की दिशा में आगे बढ़ते हुए, हाथ से मैला सफाई कर्मियों के वास्ते एवं पुनर्वास हेतु हाथ से मैला सफाई कर्मी कार्य का प्रतिषेध एवं उनका पुनर्वास अधिनियम, 2012 वर्ष 2013 में लाए किया गया। यह अधिनियम हाथ से मैला साफ करने के काम में व्यक्तियों को लगाने का प्रतिषेध करता है, और साथ ही इस कार्य में संलग्न लोगों के पुनर्वास का भी प्रावधान करता है। नए कानून को लाने की आवश्यकता इसलिए हुई कि शारीरिक रूप से मैला ढोने और खुले शौचालयों की बुराई का उन्मूलन करने में मौजूदा कानून पर्याप्त सिद्ध नहीं हुआ। दरअसल हाथ से मैला साफ करना उस प्रक्रिया की ओर संकेत करता है जिसमें सूखे अस्वच्छ शौचालयों से मानव मल साफ किया जाता है और जिनका सीवर तंत्र से कनेक्शन नहीं होता है। यह प्रथा मूल रूप से दक्षिण एशिया में सर्वाधिक है। लोगों के बीच सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक संबंध उनके जाति प्रस्थिति पर निर्भर करते हैं। श्रम विभाजन जाति के आधार पर किया जाता है। ऐसे लोगों की भारी बहुलता है जो वंचित एवं शोषित हैं और जिन्हें अस्पृश्य माना जाता है तथा जो सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक अधिकारों से वंचित हैं।

अनुच्छेद 17 अपने उद्देश्य में बेहद सफल रहा है। हमारे समाज से यह पारंपरिक कुरीति अब समाप्त हो चुकी है। इस अनुच्छेद से एक समतापूर्ण समाज उदित हुआ है।

उपाधि का अंत

अनुच्छेद 18 राज्य को, किसी व्यक्ति को चाहे वह भारतीय नागरिक हो या विदे हो, उपाधियां प्रदान करने का प्रतिषेध करता है। इस अनुच्छेद के खंड- अधीन, भारत के नागरिक को भी किसी विदेशी राज्य से कोई उपाधि स्व करने का प्रतिषेध किया गया है। खंड-3 में उपबंध किया गया है कि कोई राज्य के अधीन लाभ या विश्वास के किसी पद को धारण करते हुए विदेशी राज्य से कोई उपाधि राष्ट्रपति की सहमति के बिना स्वीकार सकता और खंड-4 के अधीन, राज्य के अधीन लाभ या विश्वास का करने वाला कोई व्यक्ति किसी विदेशी राज्य से या उसके अधीन में कोई भेंट, उपलब्धि या पद राष्ट्रपति की सहमति के बिना स्वीकार

यह ध्यान देने योग्य है कि:

- यह प्रतिबंध केवल राज्य के विरुद्ध है। अन्य सार्वज जैसे—विश्वविद्यालय आदि नेताओं या गुणीजनों का सम्मान उपाधियां या सम्मान दे सकते हैं।
- राज्य को सेना या विद्या संबंधी सम्मान देने से नहीं रो उनका उपयोग उपाधि के रूप में किया जा सकता है।
- राज्य को सामाजिक सेवा के लिए कोई सम्मान निवारित नहीं किया गया है। इस सम्मान का उपाधि के नाम के साथ जोड़कर उपयोग नहीं किया जा सकता। या पद्म विभूषण का, प्राप्तकर्ता द्वारा उपाधि के रूप में सकता और इसलिए यह संविधान में प्रतिषेध के अ

इस प्रकार अनुच्छेद 18 सभी उपाधियों के प्रद केवल सेना या विद्या संबंधी सम्मान दिए जा सक महावीर चक्र, पी.एच.डी., एम.ए., एम.एससी. इत्य

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

उल्लेखनीय है कि 1954 में भारत सरकार ने कुछ सम्मान प्रारंभ किए जिनमें एक मेडल और एक प्रमाण-पत्र दिया जाता है। इनके चार वर्ग हैं: भारत रत्न, पद्म विभूषण, पद्म भूषण और पद्मश्री। भारत रत्न कला, साहित्य और विज्ञान के क्षेत्र में सर्वोत्कृष्ट सेवाओं के लिए और सर्वोच्च कोटि की लोक सेवा की मान्यता के लिए प्रदान किया जाता है। पद्म पुरस्कार किसी भी क्षेत्र में विशिष्ट लोक सेवा के लिए प्रदान किए जाते हैं। ये सेवा की गुणवत्ता की किसी भी कोटि के अनुसार दिए जाते हैं। ये पुरस्कार सरकारी कर्मचारियों को भी दिए जा सकते हैं। कुछ लोग इन पुरस्कारों के विरुद्ध थे क्योंकि इनमें पंक्ति के आधार पर विभेद किया जाता है। कुछ लोग इनका उपयोग उपाधि के रूप में भी कर रहे थे। जब पद्म पुरस्कार प्रकाशित हुई तो उनके नाम के आगे पद्म विभूषण उपाधि के रूप में लगाया गया। मोरारजी देसाई ने अपने प्रधानमंत्रित्व काल में सभी अलंकरण समाप्त कर दिए।

इन पुरस्कारों की विधिमान्यता पर बालाजी राघवन बनाम भारत संघ में विचार हुआ। उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 18 में उन अभिजात्य उपाधियों का प्रतिषेध किया गया है जो आनुवांशिक होती हैं अर्थात्, उपाधि जन्म से ही मिल जाती है, कुछ कर्म नहीं करना पड़ता है। अनुच्छेद 18 के अनुसार भारत में नाम के आगे या पीछे कोई उपाधि नहीं लगाई जा सकती। भारत रत्न और पद्म अलंकरण, पाने वाले के नाम के आगे या पीछे कोई उपाधि नहीं लगाई जा सकती। भारत रत्न और पद्म अलंकरण, पाने वाले के नाम के आगे या पीछे प्रयोग नहीं किए जा सकते इसलिए वे उपाधि नहीं हैं और अनुच्छेद 18 का उल्लंघन नहीं करते। न्यायालय ने संप्रेक्षण भी किया कि इन पुरस्कारों को देते समय किसी भी सरकार ने विचारपूर्वक कार्य नहीं किया है। जो लोग पद पर आसीन होते हैं वे अपने राजनीतिक या संकीर्ण वर्गहित के अनुसार पुरस्कार देते हैं। न्यायालय ने यह आदेश किया कि पुरस्कार देने के लिए स्पष्ट मार्गदर्शक नियम बनाए जाएं और इस कार्य के लिए एक उच्च स्तर की समिति नियुक्ति की जाए।

2. स्वतंत्रता का अधिकार

भारतीय संविधान का उद्देश्य विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वाधीनता सुनिश्चित करना है। भारतीय संविधान में केवल समानता का ही उल्लेख नहीं मिलता, बल्कि विविध स्वतंत्रताओं का भी विस्तृत वर्णन किया गया है। अनुच्छेद 19-22 में स्वतंत्रता के अधिकार की व्यापक व्याख्या की गई है। संविधान द्वारा प्रदत्त स्वतंत्रताएं इस प्रकार हैं:

भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता (अनुच्छेद-19) लोकतंत्रात्मक राज्य व्यवस्था के संचालन का एक अनिवार्य अंग है। भारत के सभी नागरिकों को विचार करने, भाषण देने और अपने तथा अन्य व्यक्तियों के विचारों को प्रकट करने की स्वतंत्रता प्राप्त है। प्रेस भी विचारों के प्रचार का एक साधन होने के कारण इस अनुच्छेद में शामिल है। 44वें संशोधन द्वारा संविधान में एक नया अनुच्छेद-361-ए जोड़ दिया गया है जिसके अंतर्गत समाचार पत्रों को संसद व विधानमंडलों की कार्रवाई प्रकाशित करने की पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की गई है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार रेडियो और दूरदर्शन पर भी लागू होता है। संविधान में यह प्रावधान किया गया है कि वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर राज्य द्वारा भारत की प्रभुता और अखण्डता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों, लोक व्यवस्था, शिष्टाचार या सदाचार के हितों में अथवा न्यायालय की अवमानना, मानहानि या अपराध उद्दीपन के आधार पर प्रतिबंध लगाया जा सकता है।

शांतिपूर्वक सम्मेलन की स्वतंत्रता

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार तभी न्यायसंगत सिद्ध होता है जब जनता को स्वतंत्रतापूर्वक एकत्रित होने का अधिकार प्राप्त हो। इसलिए संविधान में शांतिपूर्ण ढंग से बिना किसी अस्त्र-शस्त्र के सभा या सम्मेलन आयोजित करने का अधिकार प्रत्याभूत किया गया है। उदाहरण के लिए, प्रदर्शन व जुलूस की स्वतंत्रता का यह अर्थ नहीं कि यातायात को ठप्प कर दिया जाए। [illegible] के अधिकार पर केवल सार्वजनिक व्यवस्था की रक्षा के लिए प्रतिबंध लगाया जा सकता है।

समुदाय या संगठन के निर्माण की स्वतंत्रता

नहीं है अतएव किसी भी व्यक्ति को हड़ताल करने से रोका जा सकता है। जब हड़ताल का रूप धारण कर लेता है तो वह विचारों को अभिव्यक्त करने का साधन मात्र नहीं रह जाता।

सभी व्यक्तियों को संगम या संघ या सहकारी समितियां बनाने का अधिकार संविधान द्वारा प्रत्याभूत किया गया है। अपवाद- स्वतंत्रता की आड़ में पूरी समुदायों का निर्माण नहीं कर सकते जो पड्यंत्र अथवा शांति व्यवस्था भंग करें। तात्पर्य यह है कि उनका उद्देश्य सुरक्षा व शांति को खतरा पहुंचाना या अनैतिकता को प्रोत्साहन देना न हो। वेश्याओं और सैनिकों को [illegible] की स्वतंत्रता नहीं है।

सर्वत्र आने-जाने और निवास की स्वतंत्रता

अनुच्छेद 19 में भारतीय क्षेत्र में कहीं भी भ्रमण तथा इसके किसी [illegible] में निवास करने के अधिकार का उल्लेख किया गया है। अपवादस्वरूप [illegible] हित और अनुसूचित जनजातियों की रक्षा की दृष्टि से इस अधिकार पर [illegible] प्रतिबंध लगाया जा सकता है। अनुच्छेद 370 के अनुसार कश्मीर राज्य [illegible] देश के किसी भी राज्य के निवासी को स्थायी निवास करने पर प्रतिबंध [illegible] जा सकता है। इसे संवैधानिक रूप से प्रत्याभूत किया गया है। यद्यपि [illegible] संविधान के नागरिकता संबंधी प्रावधानों का उल्लंघन है।

वृत्ति, उपजीविका या व्यापार की स्वतंत्रता

अनुच्छेद 19 के अनुसार, भारत के सभी नागरिकों को किसी भी व्यवसाय, उपजीविका अथवा व्यापार की स्वतंत्रता प्रदान की गई है। किंतु राज्य, जनता के हित में इन स्वतंत्रताओं पर उचित प्रबंध लगा सकता है। [illegible] के लिए, अत्यावश्यक पदार्थों के उत्पादन व वितरण पर उचित नियंत्रण [illegible] जा सकते हैं। किसी भी व्यवसाय अथवा कारोबार के लिए कुछ व्यक्ति [illegible] अथवा तकनीकी योग्यताएं निर्धारित की जा सकती हैं। उदाहरण के लिए [illegible] या डॉक्टर का पेशा अपनाने के लिए यह जरूरी है कि नागरिक व्यक्ति [illegible] योग्यता रखते हों।

अपराध की दोषसिद्धि के विषय में संरक्षण

अनुच्छेद 20 में कहा गया है कि किसी व्यक्ति को उस समय तक अपराध [illegible] ठहराया जा सकता जब तक कि उसने अपराध के समय में लागू किसी [illegible] का उल्लंघन न किया हो। किसी व्यक्ति पर एक अपराध के लिए एक [illegible] अधिक न मुकदमा चलाया जाएगा, न एक बार से अधिक सजा दी [illegible] किसी अपराध में अभियुक्त व्यक्ति को स्वयं अपने विरुद्ध गवाही देने [illegible] बाध्य नहीं किया जा सकता।

केदारनाथ बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (1954) के वाद में न्यायालय [illegible] स्थिर किया कि जब विधानमण्डल किसी कार्य को अपराध घोषित [illegible] किसी अपराध के दण्ड का उपबंध करता है तो वह विधि को भूतलक्षी [illegible] उन व्यक्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डाल सकता जिन्होंने उ [illegible] अधिनियम किये जाने से पूर्व कार्य किए थे।

प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण

अनुच्छेद-21 में कहा गया है कि "कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया [illegible] किसी तरीके से किसी व्यक्ति को उसके जीवन या व्यक्तिगत स्व [illegible] नहीं किया जाएगा।"

44वें संवैधानिक संशोधन (1978) द्वारा जीवन और व्य [illegible] के अधिकार को और अधिक महत्व प्रदान किया गया है। [illegible] स्थिति में भी जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार [illegible] नहीं किया जा सकता।

व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा जीवन की सुरक्षा के अं [illegible] शामिल किया गया है:

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

(i) विदेश में जाने या विदेश में भ्रमण की स्वतंत्रता।
(ii) त्वरित अन्वेषण तथा विचारण का अधिकार।
(iii) निःशुल्क विधिक सहायता का अधिकार।
(iv) यातना न दिये जाने के अधिकार को शामिल करके मानवीय गरिमा का अधिकार।
(v) निरुद्ध व्यक्ति द्वारा अपने विधिक सलाहकार तथा कुटुम्ब के सदस्यों और मित्रों के साथ मुलाकात करने का अधिकार।
(vi) पुलिस की क्रूरता के विरुद्ध अधिकार।
(vii) लोक स्वास्थ्य को बनाये रखने तथा उसकी प्रोन्नति का अधिकार।
(viii) दोष मुक्ति के बाद अवैध रूप से कारागार में निरुद्ध रखने पर प्रतिकार का आधकार।
(ix) अपील करने का कानूनी अधिकार।
(x) जीविकोपार्जन का अधिकार।

शिक्षा का अधिकार: संविधान में छियासिवें संविधान संशोधन अधिनियम-2002 द्वारा एक नया अनुच्छेद-21 (क) सम्मिलित किया गया, जिसके अंतर्गत राज्य छह से चौदह आयु वर्ग के बच्चों को अनिवार्य एवं मुक्त शिक्षा प्रदान करेगा।

गिरफ्तारी और नजरबंदी की अवस्था में संरक्षण

अनुच्छेद 22 में नागरिकों के निम्नलिखित तीन अधिकारों का उल्लेख किया गया है:

(i) बंदी बनाए गए व्यक्ति को उसके अपराध अथवा बंदी बनाये जाने के कारणों को बताए बिना अधिक समय तक बंदीगृह में नहीं रखा जा सकता।
(ii) बंदी बनाए गए व्यक्ति को वकील से परामर्श करने और अपने बचाव के लिए प्रबंध करने का अधिकार प्राप्त होगा।
(iii) बंदी बनाए गए व्यक्ति को 24 घंटों के भीतर निकटस्थ मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित करना आवश्यक होगा। मजिस्ट्रेट की आज्ञा के बिना किसी को भी 24 घंटे से अधिक समय के लिए बंदी नहीं रखा जा सकता। ये अधिकार दो प्रकार के अपराधियों पर लागू नहीं होंगे—*प्रथम*, शत्रु देश के निवासियों पर, और; *द्वितीय*, निवारक निरोध अधिनियम के अंतर्गत गिरफ्तार व्यक्तियों पर।

निवारक निरोध: निवारक निरोध का तात्पर्य वास्तव में किसी प्रकार का अपराध किये जाने से पूर्व और बिना किसी प्रकार की न्यायिक प्रक्रिया के ही नजरबंदी है। निवारक निरोध किसी गैर-कानूनी कार्य को रोकने के लिए होता है, न कि गैर-कानूनी कार्य के लिए किसी व्यक्ति को दंड देने के लिए।

अनुच्छेद-22 संसद को निवारक निरोध का उपबंध करने वाला ऐसा कानून बनाने का अधिकार देता है जिसमें यह निर्धारित किया गया हो कि किसी व्यक्ति को किन परिस्थितियों में, किस वर्ग के मामलों में, अधिक से अधिक कितनी अवधि के लिए निरुद्ध किया जा सकता है।

भारतीय संविधान के अनुसार निवारक निरोध सामान्यकाल तथा संकटकाल दोनों परिस्थितियों में लागू होता है। विशेष बात यह है कि ऐसी व्यवस्था किसी भी लोकतांत्रिक राज्य में नहीं पाई जाती। ब्रिटेन और अमेरिका आदि देश केवल युद्ध काल में ही इसको लागू करते हैं, जबकि भारत में युद्ध और शांति दोनों परिस्थितियों में लागू किया जा सकता है।

निवारक निरोध अधिनियम: संसद द्वारा 1950 ई. में निवारक निरोध अधिनियम पारित किया गया। समय-समय पर इस अधिनियम की अवधि बढ़ायी गई। यह अधिनियम 31 दिसंबर, 1969 तक ही अस्तित्व में रहा क्योंकि पश्चात् इसकी अवधि में विस्तार नहीं किया जा सका।

आंतरिक सुरक्षा व्यवस्था अधिनियम, 1971: निवारक निरोध अधिनियम के विकल्प के रूप में 7 मई, 1971 को राष्ट्रपति द्वारा 'आंतरिक सुरक्षा व्यवस्था संबंधी अध्यादेश' जारी कर जून 1971 में इसे कानून बना दिया गया। इस को बोलचाल की भाषा में 'मीसा' कहा जाता है। यह अधिनियम निवारक निरोध अधिनियम की अपेक्षा अधिक कठोर है।

निवारक निरोध अधिनियम के अंतर्गत नजरबंदी की अधिकतम अवधि एक वर्ष है। मीसा के अंतर्गत यह व्यवस्था की गई कि एक व्यक्ति को परामर्शदाता से सलाह प्राप्त किए बिना संकट काल की अवधि में अधिक-से-अधिक दो वर्ष तक नजरबंद रखा जा सकता है। इस कानून द्वारा किसी भी ऐसे व्यक्ति का नजरबंद किया जा सकता है जो कि भारत की प्रतिरक्षा, सुरक्षा, समाज के लिए आवश्यक आपूर्ति और सेवाओं की सुरक्षा के विरुद्ध कार्यवाही करता है। 'आंतरिक सुरक्षा व्यवस्था अधिनियम' 44वें संविधान संशोधन के प्रतिकूल था इस कारण अप्रैल 1979 में यह स्वतः ही समाप्त हो गया।

राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1983: 24 सितंबर, 1983 को सरकार ने 'राष्ट्रीय सुरक्षा अध्यादेश' के नाम से एक अध्यादेश जारी किया। इस अध्यादेश का उद्देश्य साम्प्रदायिक और जातीय दंगों और देश की सुरक्षा के लिए खतरनाक अन्य गतिविधियों के लिए उत्तरदायी व्यक्तियों को निरुद्ध करना है। इस अधिनियम के अंतर्गत निरोध की तिथि से 10 दिनों के भीतर निरोध के आधार बताए जाने का उपबंध है। निरुद्ध व्यक्ति विरोध की विधिमान्यता को न्यायालय में चुनौती दे सकता है।

विदेशी मुद्रा संरक्षण व सरकारी निरीक्षण अधिनियम, 1974: आर्थिक क्षेत्र में 'राष्ट्रीय सुरक्षा कानून' की श्रेणी का यह कानून 19 दिसंबर, 1974 से लागू है। 13 जुलाई, 1984 को एक अध्यादेश के आधार पर इस अधिनियम में संशोधन कर तस्करों के लिए नजरबंदी की सीमा एक वर्ष से बढ़ाकर दो वर्ष कर दी गई।

आतंकवाद एवं विध्वंसक गतिविधि निरोधक अधिनियम, 1985: भारत में बढ़ रहे आतंकवाद एवं विध्वंसक गतिविधियों पर अंकुश लगाने के लिए आतंकवाद एवं विध्वंसक गतिविधि निरोधक अधिनियम, 1985 में लागू किया गया। इसे संक्षेप में 'टाडा' (TADA) भी कहा जाता है। इस अधिनियम में अग्रलिखित प्रावधान किये गये—(i) पुलिस अभियुक्त को 180 दिनों तक हिरासत में रख सकती है। दण्डाधिकारी के समक्ष उपस्थित कर फिर अगले 180 दिनों तक हिरासत में रखा जा सकता है। (ii) पुलिस के समक्ष की गई अपराध स्वीकृति को सबूत माना जा सकता है। (iii) इसे एक राज्य से दूसरे राज्य में स्थानांतरित किया जा सकता है। (iv) अभियुक्त को आरोपी और गवाहों की जानकारी से वंचित रखा जा सकता है। (v) इसके लिए अपील मात्र 30 दिनों के भीतर केवल सर्वोच्च न्यायालय में की जा सकती है। 23 मई, 1995 को टाडा की अवधि समाप्त हो गई। टाडा कानून के उन्मूलन के पश्चात् बीजेपी सरकार द्वारा पोटा (POTA) कानून लाया गया। सरकार के सत्ताच्युत होते ही यह कानून भी समाप्त हो गया।

3. शोषण के विरुद्ध अधिकार

न्याय का एक आवश्यक पहलू यह भी है कि एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति का शोषण समाप्त किया जाए। भारतीय संविधान द्वारा न्याय के इस आदर्श की पुष्टि के लिए 'शोषण' को अपराध घोषित किया गया है।

मानव व्यापार तथा बेगार का प्रतिषेध

अनुच्छेद-23 अमरीकी संविधान के तेरहवें संशोधन की तरह है, जिसमें दासता का अंत किया गया है। भारत में भी सदियों से किसी न किसी रूप में दासता की प्रथा विद्यमान थी, जिसके अनुसार हरिजनों, खेतिहर श्रमिकों तथा स्त्रियों पर विभिन्न प्रकार के अत्याचार किए जाते थे। अतः संविधान में मानवीय शोषण के इन सभी रूपों को कानून के अनुसार दण्डनीय घोषित कर दिया गया है। इस अधिकार का एक महत्वपूर्ण अपवाद भी है कि, राज्य सार्वजनिक उद्देश्य से अनिवार्य श्रम की योजना लागू कर सकता है, लेकिन ऐसा करते समय राज्य नागरिकों के बीच धर्म, मूलवंश, जाति, वर्ण या सामाजिक स्तर के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगा।

बच्चों को कारखानों या जोखिम भरे काम में नियोजन का निषेध

अनुच्छेद-24 द्वारा 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को कारखानों या खतरनाक कामों में नियोजित करने का निषेध किया गया है। यह निषेध मानव अधिकार संबंधी अवधारणाओं तथा संयुक्त राष्ट्र के सिद्धांतों के अनुरूप है। इस अधिकार के विरुद्ध अधिकार का उद्देश्य एक वास्तविक सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना करना है।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

4. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार

धार्मिक स्वतंत्रता का अभिप्राय है कि किसी भी धर्म में आस्था रखने या न रखने के बारे में राज्य कोई हस्तक्षेप नहीं करता। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 25, 26, 27, 28 धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान करते हैं।

अंतःकरण की स्वतंत्रता

अनुच्छेद 25 के अनुसार सभी व्यक्तियों को अंतःकरण की स्वतंत्रता तथा कोई भी धर्म स्वीकार करने या उसका प्रचार करने का अधिकार प्राप्त होगा।

इस अनुच्छेद की कोई बात किसी ऐसी विद्यमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी या राज्य को विधि बनाने से नहीं रोकेगी, जो धार्मिक आचरण से संबद्ध किसी आर्थिक, वित्तीय, राजनैतिक एवं अन्य लौकिक क्रियाकलाप का विनियमन या निर्बंधन करती है, तथा सामाजिक कल्याण और सुधार के लिए या सार्वजनिक प्रकार की हिंदुओं की धार्मिक संस्थाओं को हिंदुओं के सभी वर्गों और अनुभागों के लिए खोलने का उपबंध करती है (हिंदुओं के प्रति निर्देश का अर्थ यह लगाया जाएगा कि उसके अंतर्गत सिक्ख, जैन या बौद्ध धर्म के मानने वाले व्यक्तियों के प्रति निर्देश है और हिंदुओं की धार्मिक संस्थाओं के प्रति निर्देश का अर्थ उसी प्रकार लगाया जाएगा, स्पष्टीकरण-2)।

कृपाण धारण करना और लेकर चलना सिक्ख धर्म के मानने का अंग समझा जाएगा (स्पष्टीकरण-1)।

उच्चतम न्यायालय के एक निर्णय के अनुसार धर्म का प्रचार करने के अधिकार में बलात् धर्म परिवर्तन का कोई अधिकार शामिल नहीं है क्योंकि इससे लोक व्यवस्था अस्थिर हो सकती है।

आनन्द मार्ग के मामले में, सार्वजनिक जुलूस में घातक हथियारों तथा मनुष्य की खोपड़ियों के साथ तांडव नृत्य करने को अनिवार्य धार्मिक आचरण नहीं माना गया था और लोक व्यवस्था तथा सदाचार के हित में उस जुलूस पर रोक लगाना एक युक्तियुक्त प्रतिबंध माना गया था।

इसी प्रकार बकरीद के मौके पर गौ-वध को इस्लाम की अनिवार्य प्रथा नहीं माना गया है। इसलिए लोक व्यवस्था के हित में विधि द्वारा इसका प्रतिषेध किया जा सकता है।

धार्मिक मामलों का प्रबंध करने की स्वतंत्रता

अनुच्छेद 26 के अनुसार प्रत्येक धर्म के अनुयायियों को निम्न अधिकार प्रदान किये गये हैं:

(i) धार्मिक संस्थाओं तथा दान से पोषित सार्वजनिक सेवा संस्थाओं की स्थापना तथा उनके संचालन का अधिकार।

(ii) धर्म संबंधी निजी मामलों के प्रबंध का अधिकार।

(iii) चल और अचल सम्पत्ति के अर्जन और स्वामित्व का अधिकार।

(iv) उक्त सम्पत्ति का विधि के अनुसार संचालन करने का अधिकार।

अनुच्छेद-26 के अधीन अधिकार भी लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के अधीन हैं, लेकिन वे अन्य मूल अधिकारों के अधीन नहीं हैं। अनुच्छेद 25 के अधीन किए गए प्रावधान के अनुसार न्यायालयों ने धर्म के जरूरी तथा गैर-जरूरी हिस्सों के बीच विभेद किया है। न्यायालयों के अनुसार धार्मिक संस्थाओं की संपत्ति का प्रशासन को विधि द्वारा विनियमित किया जा सकता है किंतु प्रशासन के अधिकार को पूरी तरह से छीना नहीं जा सकता (रतिलाल बनाम बंबई राज्य, 1954), (रामानुज बनाम तमिलनाडु राज्य, 1961), (सरूप बनाम पंजाब राज्य, 1960), (नरेंद्र बनाम गुजरात राज्य, 1974), (राम बनाम पंजाब राज्य, 1981)।

धर्म की अभिवृद्धि के लिए कर न देने की स्वतंत्रता

अनुच्छेद 27 में उल्लेख किया गया है कि किसी भी व्यक्ति को किसी विशिष्ट धर्म की अभिवृद्धि या पोषण में किए गए खर्च के लिए कोई कर अदा करने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा। तात्पर्य यह है कि यदि करों का इस्तेमाल किसी धर्म की अभिवृद्धि के लिए किया जाता है तो कोई आपत्ति नहीं हो सकती। यह धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा के अनुरूप है और इसका अर्थ है—सर्वधर्म समभाव। अनुच्छेद 27 किसी विशेष धर्म पर किये जाने वाले व्यय को कर से मुक्त करता है लेकिन यदि राज्य किसी धार्मिक सम्प्रदाय के लिए कोई कार्य करता है, तो ऐसे कार्य के लिए राज्य उस धार्मिक सम्प्रदाय के लोगों से शुल्क वसूल सकता है, जबकि सेवा करने के कारण राज्य शुल्क वसूलता है।

राजकीय शिक्षण संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा का निषेध

अनुच्छेद 28 में कहा गया है कि राजकीय निधि से संचालित किसी भी शिक्षण संस्था में किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा प्रदान नहीं की जाएगी।

इसके अतिरिक्त राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त या आर्थिक सहायता प्राप्त शिक्षण संस्था में किसी व्यक्ति को किसी धर्म विशेष की शिक्षा ग्रहण करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकेगा।

उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि संविधान ने धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना की है। धर्म निरपेक्ष राज्य अधार्मिक अथवा धर्मविरोधी नहीं होता। लोक व्यवस्था एवं सदाचार के लिए राज्य उपरोक्त स्वतंत्रताओं पर आवश्यक प्रतिबंध लगा सकता है। उदाहरण के लिए, धार्मिक स्वतंत्रता की आड़ में कोई बालवध या कन्या वध जैसे जघन्य अपराध नहीं कर सकता। कमिश्नर, हिंदू रिलीजिअस एंडोमेंट्स बनाम लक्ष्मीन्द्र के विवाद में न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि धार्मिक स्वतंत्रता के प्रावधान-भारत के नागरिकों के लिए ही नहीं वरन् सभी व्यक्तियों के लिए हैं, जिनमें विदेशी भी शामिल हैं।

5. संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार

भाषा, लिपि और संस्कृति बनाए रखने का अधिकार

अनुच्छेद 29 भारत में कहीं भी निवास करने वाले नागरिकों के प्रत्येक वर्ग को जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति है, उसे बनाए रखने के अधिकार की गारंटी देता है। किसी भी नागरिक को राज्य द्वारा चलाई जाने वाली अथवा उससे सहायता प्राप्त किसी भी शिक्षा संस्था में केवल धर्म, मूलवंश, जाति या भाषा के कारण प्रवेश देने से इंकार नहीं किया जाएगा।

शिक्षण संस्थाएं कायम करने का अधिकार

सभी अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी पसंद की शिक्षण संस्थाएं कायम करने और उनका प्रबंध करने का अधिकार होगा। राज्य आर्थिक सहायता देने में ऐसी संस्थाओं के साथ किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करेगा।

44वें संवैधानिक संशोधन द्वारा सम्पत्ति के मूल अधिकार को समाप्त करने का जो कार्य किया गया है उसके संबंध में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि इससे अल्पसंख्यकों के अपनी रुचि की शिक्षण संस्थाओं की स्थापना तथा इन शिक्षण संस्थाओं के प्रशासन के अधिकार पर कोई आघात नहीं पहुंचेगा। सेंट स्टीफेंस कॉलेज बनाम दिल्ली विश्वविद्यालय (1992) के विवाद में न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि पंथनिरपेक्षता या अल्पसंख्यकों के नाम पर अल्पसंख्यकों को अधिक अधिकार नहीं दिये जा सकते क्योंकि राष्ट्र की एकता और सद्भावना के लिए बहुसंख्यकों का विश्वास भी समान रूप से आवश्यक है। अतः अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थान अपने समुदाय के विद्यार्थियों के लिए अधिकतम 50 प्रतिशत तक स्थान आरक्षित कर सकते हैं।

संविधान में अल्पसंख्यकों को दी गई विशिष्टता का यह अर्थ कदापि नहीं है कि अल्पसंख्यक राष्ट्रीय जीवन की मुख्य धारा में घुल-मिल न सकें। इसका अभिप्राय यह है कि देश की प्रगति के साथ-साथ बहुसंख्यकों और अल्पसंख्यकों को एक-दूसरे से अलग करने वाले अवरोध धीरे-धीरे कम होते जाएं और भारत का परम्परावादी एवं नियमनिष्ठ समाज एक समन्वित, गतिशील समाज बनकर राष्ट्रीय आदर्शों और आकांक्षाओं के साथ उन्नति के पथ पर अग्रसर होता रहे।

6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार

संविधान न केवल अधिकारों की एक शानदार सूची प्रस्तुत करता है, बल्कि उन अधिकारों की रक्षा की भी व्यवस्था करता है। अधिकारों की रक्षा का उत्तरदायित्व उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों को सौंपा गया है।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

परमाधिकार रिटें

परमाधिकार रिटें इंग्लैंड के सामान्य कानून (Common Law) की अभिव्यक्ति हैं। ये वे असाधारण रिटें हैं जो सम्राट द्वारा इस आधार पर निकाली जाती थीं कि सामान्य विधिक उपचार अपर्याप्त हैं। आगे चलकर ये रिटें उच्च न्यायालय प्रदान करने लगा क्योंकि उसके माध्यम से ही सम्राट न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करता था। ये परमाधिकार रिटें तब दी जाती थीं जब सामान्य विधि में कोई उपचार उपलब्ध नहीं होता था या उपलब्ध उपचार अपर्याप्त था।

भारतीय शासन व्यवस्था के अंतर्गत उच्च न्यायालय की रिट निकालने की शक्ति उच्चतम न्यायालय की शक्ति की अपेक्षा अधिक व्यापक है। संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय को केवल मूल अधिकारों के प्रवर्तन के लिए ही रिटें निकालने का अधिकार है। उच्च न्यायालय न केवल मूल अधिकारों के प्रवर्तन के लिए बल्कि सामान्य विधि के उल्लंघन के कारण किसी अन्य क्षति या अवैधता के प्रतितोष के लिए भी रिट निकाल सकता है। उदाहरणस्वरूप 1. अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय को आवेदन मूल अधिकार के अतिक्रमण पर तो होगा ही, भाग-III से बाहर संविधान द्वारा अधिरोपित किसी अन्य मर्यादा के उल्लंघन पर भी हो सकेगा। 2. दोनों अधिकारिताओं के बीच एक और अंतर यह है कि उच्चतम न्यायालय भारत के राज्यक्षेत्र में किसी भी व्यक्ति या सरकार के विरुद्ध रिट निकाल सकता है। अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय किसी व्यक्ति, सरकार या प्राधिकारी के विरुद्ध रिट तभी निकाल सकता है जब वह व्यक्ति, सरकार या प्राधिकारी उस उच्च न्यायालय की राज्यक्षेत्रीय अधिकारिता के भीतर भौतिक रूप से निवास करता है या अवस्थित है अर्थात् उस राज्य का विस्तार है या यदि बाद हेतु उस अधिकारिता में उत्पन्न होता है। संविधान में इस बात का उपबंध है कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय से भिन्न न्यायालयों को रिटें निकालने के लिए शक्ति दी जाए। किंतु इस प्रकार की कोई विधि पारित नहीं की गई है। इसके फलस्वरूप उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय को छोड़कर किसी न्यायालय को इन रिटों को जारी करने की शक्ति नहीं है।

उच्चतम न्यायालय व उच्च न्यायालयों को मूल अधिकारों की रक्षा के लिए निम्न आदेश जारी करने के अधिकार दिए गए हैं:

बंदी प्रत्यक्षीकरण: लैटिन भाषा के शब्द 'हेबियस कॉरपस' का अर्थ है, "शरीर को हमारे समक्ष प्रस्तुत करो।" इसके द्वारा न्यायालय, बंदीकरण करने वाले अधिकारी को आदेश देता है कि वह बंदी बनाए गए व्यक्ति को निश्चित समय और स्थान पर उपस्थित करे, जिससे न्यायालय बंदी बनाए जाने के कारणों पर विचार कर सके। न्यायालय इस बात का निर्णय करता है कि नजरबंदी वैध है या अवैध, और यदि न्यायालय को यह लगता है कि किसी व्यक्ति को अनुचित ढंग से बंदी बनाया गया है तो वह उसकी रिहाई का आदेश दे देता है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए यह लेख सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। यह रिट किसी भी व्यक्ति को संबोधित हो सकती है चाहे वह अधिकारी हो या प्राइवेट व्यक्ति जिसकी अभिरक्षा में कोई अन्य व्यक्ति है। इस रिट की अवज्ञा करने पर न्यायालय के अवमान का दंड दिया जाएगा। इस प्रकार की रिट प्राइवेट व्यक्ति और कार्यपालिका दोनों के मनमाने कार्यों के विरुद्ध प्रजा के पक्ष में शक्तिशाली रक्षोपाय है।

अपवाद: निम्नलिखित मामलों में बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट जारी नहीं की जा सकती:

(i) जब निरुद्ध व्यक्ति न्यायालय की अधिकारिता के भीतर नहीं है,

(ii) जब निरुद्ध व्यक्ति किसी अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया है,

(iii) किसी अभिलेख न्यायालय या संसद द्वारा अवमानना के लिए कार्यवाही में हस्तक्षेप करने के लिए।

परमादेश: अंग्रेजी शब्द 'मैन्डेमस' का अर्थ है—आज्ञा। इसमें जिस निकाय या व्यक्ति को वह संबोधित है उससे यह अपेक्षा है कि वह कोई लोक कर्तव्य या लोक-कल्प विधिक कर्तव्य करे जिसे करने से उसने इंकार किया है और जो किसी अन्य पर्याप्त विधिक उपचार द्वारा कराया नहीं जा सकता। अतएव स्पष्ट है कि परमादेश तभी निकाला जाएगा जब आवेदक को लोक प्रकृति के किसी विधिक कर्तव्य के अनुपालन का विधिक अधिकार है और जिस पक्षकार के विरुद्ध रिट की याचना की जाती है। वह उस कर्तव्य को करने के लिए आबद्धकर है। यह उपचार न्यायालय के विवेकाधीन है और यदि जिस क्षति का परिवाद किया गया है उसके प्रतितोष के लिए आनुकल्पिक उपचार है तो न्यायालय परमादेश देने से इंकार कर सकता है। मूल अधिकारों के प्रवर्तन के मामलों में आनुकल्पिक उपचार के प्रश्न को उतना महत्व नहीं दिया जाता क्योंकि उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय का कर्तव्य है कि वह मूल अधिकारों का प्रवर्तन करे। भारत में परमादेश द्वारा अधिकारियों और सरकार के विरुद्ध समुचित कार्यवाहियां की जा सकती हैं। यह रिट अवर न्यायालयों और अन्य न्यायिक निकायों के विरुद्ध भी उस स्थिति में जारी की जा सकती है, यदि वे अपनी अधिकारिता का प्रयोग करने से इंकार करते हैं और इस प्रकार अपने कर्तव्य का पालन नहीं करते हैं। परमादेश निम्नलिखित व्यक्तियों के लिए नहीं दिया जाएगा:

(i) राष्ट्रपति या राज्यपाल के विरुद्ध अपने पद की शक्तियों के प्रयोग और कर्तव्यों के पालन के लिए या उन शक्तियों का प्रयोग और कर्तव्यों का पालन करते हुए किए गए या किए जाने के लिए, तात्पर्यित किसी कार्य के लिए।

(ii) परमादेश, संविधान या अधिनियम या कानूनी नियम के किसी उपबंध का उल्लंघन करने के लिए प्राइवेट व्यक्ति या निकाय के विरुद्ध नहीं दिया जा सकता चाहे यह निगमित हो या नहीं, चाहे राज्य की नीति पक्षकार के साथ दुरभिसंधि ही क्यों न हो।

प्रतिषेध: प्रतिषेध का अर्थ है—'मना करना'। जब कोई अधीनस्थ न्यायालय अपने अधिकार-क्षेत्र के बाहर जा रहा है अर्थात् कोई ऐसा कार्य कर रहा है जो उसके अधिकार क्षेत्र में न हो तो उच्चतम या उच्च न्यायालय उसे ऐसा करने से रोक सकता है। प्रतिषेध आदेश केवल न्यायिक प्राधिकारियों के विरुद्ध ही जारी किए जा सकते हैं, प्रशासनिक कर्मचारियों के विरुद्ध नहीं।

अपवाद: (i) प्रतिषेध ऐसे लोक अधिकारी के विरुद्ध नहीं जारी किया जा सकता जो न्यायिक कृत्य नहीं करता। (ii) उच्चतम न्यायालय यह रिट तभी जारी कर सकता है जब किसी कार्यवाही में अधिकारिता के दोष के कारण मूल अधिकारों पर प्रभाव पड़ता है। (iii) प्रतिषेध तब भी जारी किया जा सकता है जब कार्यवाही लंबित हो अथवा आदेश नहीं किया गया हो अर्थात् आदेश के पूर्व।

उत्प्रेषण: उत्प्रेषण का अर्थ है—"और अधिक सूचित कीजिए।" यह आज्ञा पत्र अधिकांशतः किसी विवाद को निम्न न्यायालय से उच्च न्यायालय में भेजने के लिए जारी किया जाता है जिससे वह अपनी शक्ति से अधिक अधिकारों का उपयोग न करे या अपनी शक्ति का दुरुपयोग करते हुए न्याय के प्राकृतिक सिद्धांतों को भंग न करे। इस आज्ञापत्र के आधार पर उच्च न्यायालय अधीनस्थ न्यायाधीशों से किन्हीं विवादों के संबंध में सूचना प्राप्त कर सकते हैं।

अपवाद: प्रॉविंस ऑफ बॉम्बे बनाम खुशालदास (1950) के मामले में न्यायालय ने यह कहा था कि शुद्ध रूप से प्रशासनिक कार्रवाई के विरुद्ध उत्प्रेषण की रिट जारी नहीं की जाएगी किंतु काइपाक बनाम मध्य प्रदेश राज्य (1970), केशव मिल्स बनाम भारत संघ (1973), जोसेफ बनाम एक्जीक्यूटिव इंजीनियर (1978) आदि विवादों में दिए गए निर्णयों में न्यायालय ने प्रशासनिक और न्यायिक निकायों के बीच उत्प्रेषण लेख के संबंध में इस भेद को मिटा दिया।

अधिकार पृच्छा: इसका अर्थ है—"तुम्हें क्या अधिकार है?" जब कोई व्यक्ति किसी सार्वजनिक पद को गैर-कानूनी तरीके से प्राप्त कर लेता है या गैर-कानूनी तरीके से किसी पद पर बना रहता है तो न्यायालय पूछ सकता है कि "उसे उसके पद पर बने रहने का क्या हक है?" और जब तक वह इस प्रश्न का संतोषजनक उत्तर नहीं देता, वह कार्य नहीं कर सकता। इसके लिए कुछ आवश्यक शर्तें हैं:

(i) कानून या संविधान द्वारा सृजित कोई पद होना चाहिए। (ii) किसी व्यक्ति की अनुकम्पा या इच्छा पर आधारित किसी सेवक का कार्य नहीं होना चाहिए। (iii) पद धारण से संविधान या किसी कानून का उल्लंघन नहीं होना चाहिए।

इस प्रकार व्यक्तियों के द्वारा साधारण परिस्थितियों में ही न्यायालयों की शरण लेकर अपने मौलिक अधिकारों की रक्षा की जा सकती है, लेकिन युद्ध, बाहरी आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह जैसी परिस्थितियों में, जबकि राष्ट्रपति के द्वारा संकटकाल की घोषणा कर दी गई हो, मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए कोई व्यक्ति किसी न्यायालय प्रार्थना नहीं कर सकता। अतएव संविधान के द्वारा संकटकाल में नागरिकों के मौलि अधिकारों (जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार को छोड़कर) को स्थगित की व्यवस्था की गई है।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

संवैधानिक उपचारों के अधिकारों की व्यवस्था के महत्व को दृष्टि में रखते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा था, "यदि कोई मुझसे यह पूछे कि संविधान का वह कौन सा अनुच्छेद है जिसके बिना संविधान शून्य प्रायः हो जाएगा, तो इस अनुच्छेद-32 को छोड़कर मैं और किसी अनुच्छेद की ओर संकेत नहीं कर सकता। यह संविधान का हृदय एवं आत्मा है।" यह अनुच्छेद उच्चतम न्यायालय को नागरिकों के मूल अधिकारों का संरक्षण प्रहरी बना देता है।

अंतर्निहित अधिकार

मौलिक अधिकारों के अतिरिक्त भारत के नागरिकों को अन्य अधिकार भी प्राप्त हैं जो समय-समय पर संविधान के प्रावधानों की व्याख्या के फलस्वरूप अस्तित्व में आए, जैसे, प्रेस की स्वतंत्रता, एकान्तता का अधिकार, न्यायिक परीक्षण का अधिकार आदि।

प्रेस स्वातंत्र्य

हमारे संविधान में प्रेस की स्वतंत्रता की प्रत्याभूति देने के लिए कोई विनिर्दिष्ट उपबंध नहीं है क्योंकि प्रेस की स्वतंत्रता अनुच्छेद 19(1)(क) में प्रत्याभूत अभिव्यक्ति की व्यापक स्वतंत्रता में सम्मिलित है। अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य से अभिप्रेत है किसी भी साधन द्वारा जिसमें मुद्रण भी सम्मिलित है अर्थात् केवल अपने विचार ही नहीं बल्कि दूसरों के विचार भी अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता। किंतु अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य आत्यंतिक नहीं है। यह अनुच्छेद 19 के खंड (2) में अंतर्विष्ट परिसीमाओं के अधीन है। राज्य, प्रेस की स्वतंत्रता पर राज्य की सुरक्षा, भारत की प्रभुता और अखण्डता, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों, लोक व्यवस्था, शिष्टाचार या सदाचार अथवा न्यायालय अवमान, मानहानि या अपराध-उद्दीपन के संबंध में विधियां बना सकता है।

भारत में प्रेस को कोई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं है। प्रेस की स्वतंत्रता के लिए भी वही मापदंड हैं, जो सामान्य नागरिक के लिए हैं। इस तथ्य से कई प्रस्थापनाएं उत्पन्न होती हैं:

1. प्रेस को:
   (क) सामान्य रूप से कराधान से,
   (ख) औद्योगिक संबंधों से संबंधित साधारण विधि से लागू होने से, तथा;
   (ग) कर्मचारियों की सेवाओं की शर्तों के विनियमन से, उन्मुक्ति नहीं है।
2. किंतु अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की प्रत्याभूति को देखते हुए राज्य के लिए यह विधिपूर्ण नहीं होगा कि वह:
   (क) प्रेस पर ऐसी विधियां लागू करे जो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को क्षीण करती हैं या समाप्त करती हैं या जो उसके परिचालन को कम करेगीं, जिससे सूचना के प्रसार का क्षेत्र संकुचित हो जाएगा या जिससे उसके अपने अधिकार के प्रयोग के साधन को चुनने पर बंधन लग जाए या वह सरकार से सहायता प्राप्त करने के लिए विवश हो जाए और इस प्रकार उसकी स्वाधीनता का हनन हो जाए।
   (ख) प्रेस को सबसे अलग करके उस पर अत्यधिक और प्रतिबन्धकारी भार लगाए जिससे उसका परिचालन सीमित हो जाए या उसके प्रयोग के उपकरणों के चुनने से अथवा आनुकल्पिक माध्यम खोजने के अधिकार पर शक्ति अधिरोपित हो जाए।
   (ग) प्रेस पर विनिर्दिष्ट कर अधिरोपित करे जो जानबूझकर सूचना के परिचालन को सीमित करने के लिए हो।

अब विशेष रूप से प्रेस के विरुद्ध बनाई गई किसी अधिनियमित की विधिमान्यता पर आक्षेप किया जाता है तो न्यायालय को, जैसे ऊपर बताया गया है, अधिष्ठायी और प्रक्रियात्मक युक्तियुक्तता की कसौटी पर उसकी जांच करनी होगी। इसी प्रकार के अधिनियम पंजाब विशेष शक्ति (प्रेस) अधिनियम, 1956 पर उच्चतम न्यायालय ने वीरेन्द्र बनाम पंजाब राज्य वाद में निर्णय दिया।

प्रेस अधिनियम, 1951 के पर्यवसान के पश्चात् 1956 में प्रेस नियंत्रण के लिए कोई अखिल भारतीय अधिनियम नहीं था। किंतु 1976 में संसद ने आसन्नीय सामग्री प्रकाशन निवारण अध्यादेश, 1976 अधिनियमित किया, जो स्थायी भी था और जिसमें और भी कठोर उपबंध थे। अप्रैल 1977 में जनता सरकार ने इसे निरसित कर दिया। बाद में संवैधानिक (44वां संशोधन) अधिनियम, 1978 द्वारा संविधान में एक नया अनुच्छेद 'अनुच्छेद 361क' जोड़कर इस स्थिति को और सुदृढ़ कर दिया गया।

मौलिक अधिकारों का निलम्बन

मौलिक अधिकारों का निलम्बन निम्न प्रकार से किया जा सकता है:

1. मौलिक अधिकारों पर युक्तियुक्त निर्बंधन अधिरोपित किये जाने के संदर्भ में अनुच्छेद 19(2) से 19(6) में उल्लेख किया गया है।
2. अनुच्छेद 15(1) तथा (4) के अनुसार सामाजिक उद्देश्यों के प्रवर्द्धन, जैसे—महिलाओं, बच्चों तथा पिछड़ी जातियों के कल्याण के लिए राज्य मौलिक अधिकारों में हस्तक्षेप कर सकता है।
3. अनुच्छेद 34 के अनुसार जब किसी क्षेत्र में सेना विधि प्रवर्तन में हो, तब संसद विधि द्वारा मौलिक अधिकारों पर निर्बंधन अधिरोपित कर सकती है।
4. जब देश में अनुच्छेद 352 के अधीन राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा की गई हो, तब अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों का स्वतः निलंबन हो जाता है और राष्ट्रपति अधिसूचना जारी करके अन्य मूल अधिकारों को समाप्त कर सकता है, लेकिन अनुच्छेद 20 तथा 21 द्वारा प्रदत्त अधिकार कभी भी समाप्त नहीं किये जा सकते।
5. संसद संविधान में संशोधन करके मौलिक अधिकारों को निलम्बित कर सकती है, लेकिन ऐसा करते समय वह संविधान के मूल ढांचे को नष्ट नहीं कर सकती।

मौलिक अधिकारों के उपांतरण की शक्ति

अनुच्छेद-33 द्वारा संसद को उपांतरण की शक्ति प्रदान की गई है। संसद अपनी इस शक्ति के प्रयोग से निम्नलिखित व्यक्तियों के संबंध में मौलिक अधिकारों को उपांतरित करके यह व्यवस्था कर सकती है कि किस सीमा तक इन व्यक्तियों को मौलिक अधिकार प्राप्त होंगे:

(क) सशस्त्र बलों के सदस्यों को,
(ख) लोक व्यवस्था बनाये रखने के लिए उत्तरदायी सुरक्षा बलों के सदस्यों को,
(ग) आसूचना या प्रति आसूचना के उद्देश्य के लिए राज्य द्वारा स्थापित किसी ब्यूरो या अन्य संगठन में नियोजित व्यक्तियों को, तथा;
(घ) उक्त तीनों में निर्दिष्ट किसी बल, ब्यूरो या संगठन के प्रयोजनों के लिए स्थापित दूर संचार प्रणाली या उसके संबंध में नियोजित व्यक्तियों को।

सम्पत्ति का अधिकार—जो अब मूल अधिकार नहीं रह गया है

44वें संशोधन अधिनियम से पहले की स्थिति: मूल संविधान द्वारा प्रदत्त कोई भी अधिकार इतना विवादित नहीं रहा जितना कि संपत्ति का अधिकार। 44वें संवैधानिक संशोधन (30 अप्रैल, 1979) के पूर्व तक सम्पत्ति का अधिकार मूल अधिकार के रूप में प्राप्त था। संविधान के पांच अनुच्छेद—19(1), 31, 31(क)ए 31(ख) और 31(ग) संपत्ति के अधिकार और उस पर लगाई गई सीमाओं की व्याख्या करते थे। 44वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978 द्वारा अनुच्छेद-19(1)(च) और अनुच्छेद-31 के अंतर्गत प्रदत्त सम्पत्ति के मौलिक अधिकार का लोप कर दिया गया। इसे अब संविधान के भाग-12 के अंतर्गत एक नया अध्याय-4 अंतःस्थापित करके उसमें अनुच्छेद-300(क) बना दिया गया है। इस प्रकार सम्पत्ति का अधिकार संवैधानिक अधिकार तो

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

है किंतु मौलिक अधिकार नहीं है अर्थात्, इस अधिकार के उल्लंघन की अवस्था में पीड़ित व्यक्ति अनुच्छेद-32 के अधीन सीधे उच्च या सर्वोच्च न्यायालय की शरण नहीं ले सकता। 1950 से लेकर 1978 तक इस अधिकार के संबंध में अनेक संवैधानिक संशोधन हुए। इन संशोधनों का उद्देश्य जमींदारी, मालगुजारी एवं इसी प्रकार के अन्य अधिकारों को समाप्त करने वाली विधियों की रक्षा करना और उन्हें वैधानिक करना था तथा कृषि भूमि सुधार एवं अन्य इसी प्रकार के कानून न्यायिक समीक्षा से बाहर कर दिए गए।

संविधान द्वारा प्रदत्त सम्पत्ति के इस मूल अधिकार में वर्ष 1951 से ही विभिन्न संशोधन किए गए जो इस प्रकार हैं:

प्रथम संशोधन, 1951: मूल संविधान में जो सम्पत्ति के अधिकार की व्यवस्था की गई थी, उसके अनुसार ऐसे कानून का निर्माण नहीं किया जा सकता था, जिसके अंतर्गत किसी की भी व्यक्तिगत सम्पत्ति को बिना उचित मुआवजे के लेने की व्यवस्था हो। किंतु 1951 के संवैधानिक संशोधन द्वारा इस व्यवस्था को परिवर्तित करके यह निश्चित कर दिया गया कि जमींदारी के अंत से संबंधित विधेयक मुआवजे की व्यवस्था के न होते हुए भी वैध समझे जायेंगे। इस प्रकार इस संविधान के अनुसार राज्य बिना मुआवजे के भी व्यक्ति की भूमि ले सकता है।

चतुर्थ संशोधन, 1955: अनुच्छेद 31 के अंतर्गत राज्य सार्वजनिक उद्देश्य के लिए निजी संपत्ति पर कब्जा कर सकता था पर उसके लिए यह जरूरी था कि जिस व्यक्ति को संपत्ति से वंचित किया जाए उसे उसका मुआवजा मिले। अनुच्छेद 31 की व्याख्या करते हुए न्यायपालिका ने निर्णय दिया था कि संपत्ति से वंचित किए जाने पर एक व्यक्ति को जो मुआवजा दिया जाता है, वह पर्याप्त होना चाहिए अर्थात् मुआवजे की रकम इतनी होनी चाहिए जिससे कि उसकी क्षतिपूर्ति हो सके। इस निर्णय के पश्चात् संकट की स्थिति उत्पन्न हो गई। संकट यह था कि मुआवजा देने के लिए उतना धन कहां से आए। इसलिए संविधान के चौथे संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गई कि मुआवजे की रकम पर्याप्त है अथवा नहीं, इसके संबंध में न्यायालयों को निर्णय देने का कोई अधिकार नहीं होगा।

25वां संवैधानिक संशोधन, 1971: इस संशोधन द्वारा अनुच्छेद 31 को संशोधित कर तथा अनुच्छेद 31(ग) के बाद कुछ शब्दों को जोड़कर यह व्यवस्था की गई है कि सम्पत्ति को सार्वजनिक दृष्टि-से अर्जन और उसके मुआवजे की राशि को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती।

29वां संवैधानिक संशोधन, 1972: इस संशोधन द्वारा केरल राज्य के भूमि सुधार से संबंधित दो कानूनों को 9वीं सूची में शामिल कर लिया गया और अब इन्हें न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती। इस संवैधानिक संशोधन द्वारा यह निश्चित किया गया कि यदि भूमि के सीमाकरण से व्यक्तिगत जोत की भूमि भी प्रभावित होती है तो राज्य के द्वारा वह भूमि अधिगृहीत की जा सकती है और व्यवस्थापिका द्वारा इस भूमि के बदले में निश्चित किया गया मुआवजा तुलित न होने की स्थिति में न्यायालय को मुआवजे की धनराशि पर विचार करने का अधिकार नहीं होगा। 34वां संवैधनिक संशोधन, 1974 और 40वां संवैधानिक संशोधन, 1976 भी इसी संदर्भ में थे।

44वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978 के पूर्व सम्पत्ति के मूल अधिकार के विषय में संविधान के भाग-3 में स्थूल रूप में निम्नलिखित चार प्रत्याभूतियां विद्यमान थीं:

1. सभी नागरिकों को सम्पत्ति के अर्जन, धारण और व्ययन का अधिकार होगा जिस पर राज्य युक्तियुक्त निर्बंधन लगा सकेगा।
2. विधि के प्राधिकार के बिना किसी भी व्यक्ति को उसकी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जाएगा।
3. राज्य केवल सार्वजनिक प्रयोजन के लिए ही व्यक्ति की सम्पत्ति का बलात् अर्जन अथवा अधिग्रहण करने की विधि बना सकेगा।
4. ऐसी विधि में सम्पत्ति के मालिक को उसकी सम्पत्ति के अर्जन या अधिग्रहण के बदले में एक धनराशि देने का उपबंध होगा, परंतु इस धनराशि की पर्याप्तता के विषय में किसी न्यायालय के समक्ष प्रश्न नहीं उठाया जा सकता।

संसद की संविधान संशोधन शक्ति और मौलिक अधिकार

संविधान की प्रारंभिक अवस्था से ही मूल अधिकारों का अस्तित्व है। मूल अधिकारों के संशोधन की प्रक्रिया के संदर्भ में संविधान में भी कोई प्रावधान नहीं किया गया है। संविधान में संशोधन करने की प्रक्रिया का उल्लेख स्वयं संविधान के अनुच्छेद 368 में किया गया है। लेकिन मौलिक अधिकारों के संशोधन के संदर्भ में अनुच्छेद 368 के उपयोग पर सदैव विवाद रहा है क्योंकि संविधान के अनुच्छेद 13(2) में यह भी निर्देश दिया गया है कि राज्य ऐसी कोई विधि नहीं बनाएगा, जो मूल अधिकारों को सीमित करती हो।

संविधान का सर्वोच्च निर्वचनकर्ता उच्चतम न्यायालय है, इसलिए उसके समक्ष सर्वप्रथम 1951 में 'शंकरी प्रसाद बनाम बिहार राज्य' के मामले में यह प्रश्न उठाया गया कि मौलिक अधिकारों का संशोधन संसद कर सकती है अथवा नहीं। इस संदर्भ में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि अनुच्छेद 368 में निहित प्रक्रिया के अनुसार संविधान संशोधन विधि के अंतर्गत नहीं आता अतएव संसद संविधान में संशोधन कर सकती है।

1966 में संविधान के 17वें संशोधन पर निर्णय देते हुए सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा भी इस पर सहमति व्यक्त की गई थी, लेकिन 17 फरवरी, 1967 को 'गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य' के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि मौलिक अधिकारों को संविधान में सर्वोपरि स्थिति प्रदान की गई है, इसलिए संसद मौलिक अधिकारों में कोई परिवर्तन नहीं कर सकती।

उक्त निर्णय से आर्थिक और सामाजिक प्रगति की दिशा अथवा संविधान में दिए गए नीति-निदेशक तत्वों को कार्य रूप में परिणित करने के संदर्भ में संसद के समक्ष संकट की स्थिति पैदा हो गई। अतः विचार-विमर्श के उपरांत 1971 में 24वें संशोधन द्वारा यह निश्चित किया गया कि संसद को संविधान के किसी भी उपबंध को (जिसमें मौलिक अधिकार भी आते हैं) संशोधित करने का अधिकार होगा।

24वें संविधान संशोधन की संवैधानिकता को 'केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य' 1973 के मामले में चुनौती दी गई। सर्वोच्च न्यायालय ने इस मामले की सुनवाई के लिए 13 सदस्यीय खण्डपीठ का गठन किया। इस खण्डपीठ ने 7:6 के बहुमत से यह निर्णय दिया कि (i) संसद को मूल अधिकारों में संशोधन की शक्ति प्राप्त है और संवैधानिक संशोधन अनुच्छेद 13(2) में प्रयुक्त विधि के अंतर्गत शामिल नहीं है। (ii) संसद को संविधान में संशोधन करने की व्यापक शक्ति प्राप्त है लेकिन वह इस शक्ति का प्रयोग करके संविधान के मूल ढांचे को नष्ट नहीं कर सकती। इस प्रकार न्यायालय द्वारा संविधान के मूल ढांचे की अवधारणा को स्पष्ट किया गया।

केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य के मामले में दिए गए निर्णय से उत्पन्न कठिनाई को दूर करने के लिए संविधान में 1976 में 42वां संशोधन करके यह व्यवस्था की गयी कि (i) संसद द्वारा किये गये संविधान संशोधन की वैधता को किसी भी आधार पर न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती, तथा; (ii) संसद की संविधान संशोधन शक्ति पर कोई परिसीमा नहीं होगी।

संविधान के 42वें संशोधन को 1979 में सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गई। इस संबंध में प्रस्तुत याचिका की पैरवी करते हुए प्रसिद्ध विधिवेत्ता ए. पालकीवाला ने कहा था कि, "42वें संवैधानिक संशोधन द्वारा संविधा बुनियादी ढांचे को नष्ट कर दिया गया है, अतः इसे अवैध घोषित किया चाहिए।" 'मिनर्वा मिल बनाम भारत संघ' के मामले में 5 न्यायाधीशों व संवैधानिक खण्डपीठ ने सर्वसम्मति से यह निर्णय दिया कि संविधान में

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

करके की जाने वाली उक्त व्यवस्था असंवैधानिक है, तथा संसद संविधान के माध्यम से संविधान के मूल ढांचे में कोई परिवर्तन नहीं कर सकती। इस निर्णय के द्वारा 42वें संवैधानिक संशोधन के दो प्रावधानों खण्ड-4 और खण्ड-55 को अवैध घोषित कर दिया गया क्योंकि इनसे संविधान के मूल ढांचे को आघात पहुँचता था और ये केशवानंद भारती विवाद में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का उल्लंघन करते थे। 42वें संवैधानिक संशोधन के जिन खण्डों को अवैध घोषित किया गया वे इस प्रकार हैं:

खण्ड-4 में यह व्यवस्था की गई थी कि निदेशक तत्वों को लागू करने के लिए संसद जिन किन्हीं कानूनों का निर्माण करे, उन्हें इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि ये कानून संविधान में दिए गए किसी अधिकार को सीमित या समाप्त करते हैं।

खण्ड-55 में यह व्यवस्था थी कि "संसद द्वारा संविधान में किए गए किसी भी संशोधन को (जिसमें संविधान का भाग 3 भी शामिल है) इसके अतिरिक्त अन्य किसी आधार पर न्यायालय में चुनौती दी जा सकेगी कि इसमें अनुच्छेद 368 द्वारा बतलाई गई प्रक्रिया को नहीं अपनाया गया है।"

इस प्रकार संसद की कानून निर्माण की शक्ति को सीमित कर दिया गया है और संसद द्वारा निर्मित कानूनों तथा संवैधानिक संशोधनों की न्यायपालिका द्वारा जांच की जा सकती है। इस बात पर पुनः विवाद खड़ा हो गया है कि किसी प्रश्न की संवैधानिकता अथवा असंवैधानिकता के संदर्भ में अंतिम निर्णय की शक्ति संसद को प्राप्त होनी चाहिए अथवा सर्वोच्च न्यायालय को।

आधारिक लक्षणों का संशोधन सम्भव नहीं

संविधान के कुछ आधारिक लक्षण हैं, जिन्हें अनुच्छेद-368 के अधीन संशोधित नहीं किया जा सकता। यदि संविधान संशोधन अधिनियम लाने का उद्देश्य संविधान की आधारिक संरचना अथवा ढांचे में परिवर्तन लाना हो तो न्यायालय को उक्त अधिनियम को 'शक्ति बाह्य' के आधार पर शून्य घोषित करने की शक्ति होगी। ऐसा इसलिए है क्योंकि अनुच्छेद-368 में 'संशोधन' का अभिप्राय ऐसे परिवर्तन से है, जो संविधान की संरचना को प्रभावित नहीं करता है। ऐसा करना नया संविधान बनाने के तुल्य होगा। संविधान के आधारिक लक्षण हैं:

(i) संविधान की सर्वोच्चता;
(ii) विधि का शासन;
(iii) शक्ति पृथक्करण का सिद्धांत;
(iv) संविधान की प्रस्तावना में घोषित उद्देश्य;
(v) न्यायिक पुनर्विलोकन, अनुच्छेद-32;
(vi) परिसंघवाद;
(vii) पंथनिरपेक्षता;
(viii) प्रभुत्वसम्पन्न; लोकतांत्रिक गणराज्य की संरचना;
(ix) व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं गरिमा;
(x) राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता;
(xi) समता का सिद्धांत;
(xii) भाग-III के अन्य मौलिक अधिकारों का सार;
(xiii) सामाजिक एवं आर्थिक न्याय की संकल्पना—लोक कल्याणकारी राज्य का सृजन; सम्पूर्ण भाग-IV;
(xiv) मौलिक अधिकार और निदेशक तत्वों के मध्य संतुलन;
(xv) संसदीय प्रणाली का शासन;
(xvi) स्वतंत्रता एवं निष्पक्ष निर्वाचन का अधिकार;
(xvii) अनुच्छेद-368 के द्वारा संशोधनकारी शक्ति पर लगाए गए निर्बन्धन;
(xviii) न्यायपालिका की स्वतंत्रता, तथा;
(xix) न्याय का वास्तव में सुलभ होना।

मौलिक अधिकारों से संबंधित संवैधानिक सिद्धांत

संविधान के अनुच्छेद 13 में मौलिक अधिकारों से संबंधित निम्नलिखित सिद्धांतों को सम्मिलित किया गया है। ये निम्नानुसार हैं:

न्यायिक पुनर्विलोकन

जब राज्य, जिसके अंतर्गत संसद, विधान मण्डल, स्थानीय प्राधिकारी एवं अन्य प्राधिकारी शामिल हैं, कोई अधिनियम अथवा अध्यादेश जारी करते हैं और इनमें अंतर्विष्ट प्रावधान संविधान के भाग 3 में व्यक्तियों को प्रदान किए गये अधिकारों का उल्लंघन करते हैं, तो याचिका दाखिल किये जाने पर न्यायालय उनका पुनर्विलोकन कर सकते हैं। न्यायालय ऐसे निर्णयों का भी न्यायिक पुनर्विलोकन कर सकते हैं, जो मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करते हैं। न्यायिक पुनर्विलोकन के सिद्धांत को संयुक्त राज्य अमेरिका से अधिगृहीत किया गया है।

भावी प्रवर्तन का सिद्धांत

मौलिक अधिकार का प्रभाव भूतलक्षी नहीं है बल्कि इसका भावी प्रभाव है। भारतीय संविधान के प्रवर्तन के पूर्व प्रवृत्त विधियों पर मौलिक अधिकारों का प्रभाव उस तिथि से होगा, जिस तिथि से इन्हें लागू किया गया। संविधान के प्रवर्तन के पूर्व किये गये कार्यों के संबंध में संविधान पूर्व विधियां लागू होंगी। इसलिए संविधान पूर्व प्रवृत्त विधियों के अधीन संविधान के प्रवर्तन के पूर्व उत्पन्न अधिकार एवं दायित्व का प्रवर्तन मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के बावजूद भी कराया जा सकता है।

पृथक्करण का सिद्धांत

यदि राज्य द्वारा निर्मित किसी कानून का कोई भाग मौलिक अधिकारों से असंगत अथवा मौलिक अधिकारों के विरुद्ध हो, तो उसे पूर्णतः असंवैधानिक और शून्य नहीं घोषित किया जाएगा, शर्त यह है कि वह भाग पृथक्करणीय हो। यदि वह भाग पृथक्करणीय नहीं है, तो उस पूरे कानून को शून्य घोषित कर दिया जाएगा।

अधित्यजन का सिद्धांत

मौलिक अधिकारों के संबंध में प्रतिपादित सिद्धांतों में सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत अधित्यजन का सिद्धांत है। इसके अनुसार कोई भी व्यक्ति, जिसे मौलिक अधिकार प्रदान किया गया हो, वह इनका परित्याग नहीं कर सकता।

आच्छादन का सिद्धांत

संविधान के प्रवर्तन के पूर्व भारत में प्रवृत्त विधियां, जो मूलाधिकारों से असंगत है या उनके विरुद्ध हैं, समाप्त नहीं होती बल्कि निष्क्रिय हो जाती हैं और ऐसी विधियां मूल अधिकारों द्वारा आच्छादित हो जाती हैं।

वस्तुतः मौलिक अधिकार सरकार के अवांछित हस्तक्षेप से नागरिकों की अस्मिता, सम्मान एवं स्वतंत्रता की रक्षा करते हैं एवं विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका पर अंकुश लगाते हैं। मौलिक अधिकार राजनीतिक समानता एवं कानून के शासन को सुनिश्चित करता है साथ ही नागरिकों हेतु सरकार पर इनके सुचारू कार्यान्वयन के लिए दावा स्थापित करता है। गौरतलब है कि इनके न्याययोग्य होने के कारण इनके सुचारू संचालन के लिए न्यायपालिका की जिम्मेदारी भी अहम होती है। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश भगवती ने मेनका गांधी बनाम भारतीय संघ के मामले में कहा था कि "मौलिक अधिकार उन मूल्यों को प्रतिबिम्बित करते हैं जो वैदिक काल से चले आ रहे हैं तथा जिनका पालन जनता करती आ रही है। इनका मुख्य उद्देश्य व्यक्ति के सम्मान की रक्षा करना एवं ऐसी परिस्थितियां प्रदान करना है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास कर सके।

WWW.GRADESETTER.COM